बुर्जुआ जनवादी क्रांति, नवजनवादी क्रांति और समाजवादी क्रांति : एक ऐतिहासिक पुनरावलोकन

विज्ञान में आम तौर पर एक पद्धति का पालन किया जाता है – अमूर्तन की पद्धति का। इसमें किसी परिघटना का अध्ययन करने के लिए उसे उसके सबसे मूल रूप में लिया जाता है तथा उसको प्रभावित करने वाले और उसको जटिल बना देने वाले अन्य कारकों को हाल–फिलहाल अलग कर दिया जाता है। एक बार उसके सबसे बुनियादी रूप में उसका अध्ययन कर लिये जाने के बाद, इस बुनियादी रूप में उसकी गति व परिवर्तन के सभी नियमों–उपनियमों को समझ लिये जाने के बाद, फिर मूर्तन की ओर, ज्यादा ठोस अध्ययन की ओर बढ़ा जाता है। तब इस बुनियादी चीज पर एक के बाद एक कारक आरोपित किये जाते हैं और बुनियादी चीज की गति और परिवर्तन के नियमों–उपनियमों में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। सारे कारक आरोपित कर देने के बाद परिघटना हमारे सामने उस रूप में आ उपस्थित होती है जिस रूप में वह वास्तव में भौतिक जगत में ठोस रूप में विद्यमान होती है। भौतिक विज्ञान से एक उदाहरण लें तो, विद्युत दो धनात्मक और ऋणात्मक आवेशों वाले बिन्दुओं को एक सुचालक से जोड़ने पर पैदा होती है। यह विद्युत का सबसे बुनियादी रूप है। विद्युत के अध्ययन की शुरूआत भी यहीं से होती है। लेकिन यदि कोई व्यक्ति किसी बिजली घर में जाकर धनात्मक और ऋणात्मक आवेश वाले बिन्दु तलाशने लगे जिनके बीच सुचालक जोड़ने से विद्युत पैदा हो रही हो तो उसे कुछ हाथ नहीं लगेगा। यही नहीं, कोई विद्युतकर्मी इस प्रयास को ही बेवकूफी मानेगा। वहां उसे मिलेगी टर्बाइन और जनरेटर तथा जनरेटर में स्टेटर और रोटेटर। विद्युत उत्पादन का मूर्त रूप यही होगा।

समाज विज्ञानों पर भी विज्ञान की यही आम पद्धति लागू होती है। यहां भी किसी ठोस सामाजिक परिघटना को सबसे पहले उसे उसके बुनियादी,अमूर्त रूप में समझा जाता है तथा बाद में अन्य कारकों को उस पर आरोपित कर उसके ठोस रूप तक पहुंचा जाता है। मार्क्स ने ''पूंजी'' में पूंजी अध्ययन के लिए यही पद्धति अपनायी है। ''पूंजी'' का खण्ड–1 पूंजी का सबसे अमूर्त चित्र प्रस्तुत करता है जबकि खण्ड–3 पूंजी उस रूप में प्रस्तुत करता है जिसमें वह मोटा–मोटी समाज में गतिमान होती है।

यही बात समाजवादी क्रांति और समाज के क्रांतिकारी रूपांतरण पर भी लागू होती है। कम्युनिस्ट वर्तमान शोषणकारी समाज को खत्म कर एक शोषण विहीन कम्युनिष्ट समाज की स्थापना करना चाहते हैं। लेकिन इसके लिए उन्हें वर्तमान के, ऐतिहासिक रूप से उनको प्रदत्त समाज से ही प्रस्थान करना होता है। ऐसा नहीं हो सकता कि वे अपनी मर्जी का कोई समाज चुन लें और उसमें क्रांति कर कम्युनिज्म स्थापित कर दें। उन्हें तो उसी समाज से निपटना पड़ता है, जो उन्हें मिला है। ओर यह समाज अभी तक ऐसा समाज नहीं रहा है जो भावी कम्युष्टि समाज के लिए सबसे अच्छे प्रस्थान बिन्दु का काम दें। बात उल्टी रही है।

इस ठोस समाज को समझने और उसके क्रांतिकारी रूपांतरण में

मार्क्स - एंगेल्स के जमाने से ही कम्युनिस्टों ने उसी अमूर्तन की पद्धति का पालन किया है। उसे सबसे पहले उसकी सबसे बुनियादी गति में समझा गया और फिर ठोस जटिलता की ओर बढ़ा गया तथा उससे निपटने की कोशिश की गयी। द्वन्द्वात्मक तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद के आम सार्वभौमिक नियमों के अलावा मार्क्सवादी विचारधारा में सारा कुछ इसी से संबंधित है तथा इसी से मार्क्सवाद और ज्यादा समृद्ध हुआ है। इसी से क्रांति की रणनीति और रणकौशल लगातार बदलते रहे हैं (देश व काल दोनों में) तथा समग्र क्रांतिकारी अनुभव और ज्यादा समृद्ध होता रहा है।

'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' में मार्क्स-एंगेल्स ने इसी पद्धति के आधार पर पूंजीवादी समाज का तथा उसमें चलने वाले पूंजीपति और सर्वहारा के वर्ग संघर्ष का चित्रण किया जिसकी तार्किक परिणति समाजवादी क्रांति, सर्वहारा द्वारा राज्य सत्ता पर कब्जा तथा अंततः कम्युनिस्ट समाज की स्थापना है। 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' में पूंजीवादी समाज का, उसकी गति और भविष्य का यह चित्रण उस समय उसी अमूर्तन की पद्धति से किया गया था, खासकर पहले अध्याय-'पूंजीपति और सर्वहारा' में। (सही मायने में यह चित्रण कुछ हद तक आज ठोस रूप ग्रहण कर सका है - यूरोप- अमेरिका में, हालांकि उसमें साम्राज्यवाद के कारण दूसरी जटिलताएं जुड़ गयी हैं।) सर्वहारा द्वारा पूंजीपति वर्ग का तख्ता पलटना, राज्य सत्ता पर कब्जा तथा अंततः कम्युनिस्ट समाज की स्थापना वहां बहुत बुनियादी, स्पष्ट किन्तु अमूर्त रूप में विद्यमान है।

लेकिन कम्युनिस्टों को तो ठोस समाज से निपटना था। उन्हें ठोस रूप में विद्यमान समाज को समझना और उसमें क्रांति करनी थी और यह ठोस चीज खुद 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' में ही विद्यमान है - उसके चौथे अध्याय में। वहां ठोस रूप में मौजूद देशों को उठाया गया है और उनमें कम्युनिस्ट पार्टी की रणनीति और रणकौशल निर्धारित की गई है-1848 की परिस्थितियों में।

खुद जर्मनी की ठोस स्थिति, जिस पर उस समय मार्क्स - एंगेल्स का ध्यान मुख्यतः केन्द्रित था, उससे बिल्कुल भिन्न थी, जो 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' में पूंजीवाद का चित्र थी। उस समय वहां पूंजीवाद का विकास अभी शुरू ही हुआ था और बहुत कमजोर था। वह उस समय 1905 के रूसी पूंजीवाद से भी पीछे था। ऐसे में 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' में ही जर्मनी के संबन्ध में मार्क्स और एंगेल्स ने उस समय जर्मनी की ठोस स्थिति के अनुसार नीति अपनाई जो अध्याय - एक में वर्णित आम गति से भिन्न थी।

तब से लेकर बीसवीं सदी की सभी क्रांतियों (जिनका नेतृत्व कम्युनिस्टों ने किया) के समूचे इतिहास पर यही बात लागू होती है (1871 के पेरिस कम्यून को छोड़कर)। इन सभी क्रांतियों में पूंजीवाद की मूलभूत गति को जटिल बना देने वाले कारकों (खासकर पूंजीवाद पूर्व की सामाजिक सरंचनाओं के अवशेषों और साम्राज्यवाद) को अपने हिसाब में लेते हुए कम्युनिस्टों ने क्रांति की रणनीति और रणकौशल निर्धारित किए और क्रांति को अंजाम दिया। इस प्रक्रिया में कुल मूलभूत समानताओं के साथ-साथ क्रांतियों ने भिन्न-भिन्न रूप अख्तियार किए।

इस लेख में हम ठोस समाजों में क्रांति की बदलती रणनीति और रणकौशल का लेखा-जोखा लेंगे तथा खासकर इस बात पर ध्यान केन्द्रित करेंगे कि जिसे चीन में नवजनवादी क्रांति का नाम दिया गया वह उसके पहले की क्रांति की रणनीति और रणकौशल से किस तरह भिन्न थी। यह आज हमारे देश में नवजनवादी क्रांति बनाम समाजवादी क्रांति की बहस के संदर्भ में अत्यावश्यक है। यह आवश्यक है कि क्रांति की रणनीति और रणकौशल के एक ऐतिहासिक लेखे-जोखे के आधार पर कुछ मूलभूत बातों को स्पष्ट किया जाय।

I

लेकिन इसके पहले कि हम क्रांतियों की रणनीति और रणकौशल के ऐतिहासिक लेखे-जोखे की ओर बढ़ें, क्रांति के संबंध में कुछ बुनियादी बातें शुरू में ही स्पष्ट कर लेना जरूरी है। ये बातें हैं - क्रांति का मूलभूत प्रश्न, क्रांति के मूलभूत कार्यभार तथा वर्गों की लामबन्दी इत्यादि। आइये देखें, इस सम्बन्ध में स्टालिन क्या कहते हैं :

> "लेनिन कहते हैं कि **'प्रत्येक क्रांति का मुख्य प्रश्न राज्यसत्ता का प्रश्न होता है'** (देखें, लेनिन, 'क्रांति के बुनियादी प्रश्नों में से एक' सितम्बर, 1917)। किस वर्ग या किन वर्गों के हाथों में सत्ता केन्द्रित है, किस वर्ग या किन वर्गों को उखाड़ फेंकना है, कौन से वर्ग या कौन से वर्गों को सत्ता हासिल करनी है- 'प्रत्येक क्रांति का मुख्य प्रश्न' यह होता है।
>
> "पार्टी के बुनियादी राजनीतिक नारे, जो पार्टी की किसी विशेष मंजिल के समूचे काल के दौरान अपनी वैधता कायम रखते हैं, बुनियादी नारे नहीं कहे जा सकते यदि वे पूर्णरूप से तथा समग्र रूप से लेनिन की इस मुख्य थीसिस पर आधारित नहीं है।
>
> "बुनियादी नारे तभी सही हो सकते हैं, जब वे वर्ग शक्तियों के मार्क्सवादी विश्लेषण पर आधारित हों, जब वे वर्ग संघर्ष के मोर्चे पर क्रांतिकारी शक्तियों के विन्यास की सही योजना पेश करते हों, जब वे जन समुदाय को क्रांति की विजय के लिए संघर्ष के मोर्चे पर लाने में मदद करते हों, ऐसे संघर्ष के मोर्चे पर जो नये वर्ग द्वारा सत्ता पर कब्जा करने के लिए हों, जब वे व्यापक जनसमुदाय में से बड़ी और शक्तिशाली राजनीतिक सेना के निर्माण में जो इस कार्यभार को पूरा करने के लिए आवश्यक है, पार्टी की मदद करते हों।" (J.V Stalin, 'The Party's Three Fundamental Slogans on the Peasant Question', 'Reply to Yan-Sky', 'Problems of Leninism', Foreign Language Press, Peking, 1976, PP.-237-238, अनुवाद हमारा, जोर मूल में)

यानि प्रत्येक क्रांति का मूलभूत प्रश्न राज्य सत्ता का प्रश्न होता है। यह इसी बात को कहने का दूसरा तरीका है कि जो वर्ग राज्य सत्ता पर काबिज होता है वह समाज पर शासन करता है, समाज को अपने हितों के हिसाब से चलाता है। ऐसे में यदि कोई नया वर्ग या नये वर्ग समाज को अपने हिसाब से चलाना चाहते हैं तो उन्हें सर्वप्रथम राज्य सत्ता पर कब्जा करना पड़ेगा । विरोधी वर्ग को कुचलने, दबा कर रखने, नियंत्रित करने की मशीनरी यानि राज्य सत्ता अपने हाथ में लेनी पड़गी। इस तरह राज्य सत्ता का प्रश्न स्वभावतः ही क्रांति का मूलभूत प्रश्न बन जाता है।

लेकिन कोई भी नया वर्ग अपनी इच्छा मात्र से शासक वर्ग नहीं बन सकता। वह केवल अपनी इच्छा से राज्य सत्ता पर काबिज नहीं हो सकता। इसी तरह से राज्य सत्ता पर काबिज पुराने शासक वर्ग नये शासक वर्ग की इच्छा मात्रा से सत्ताच्युत नहीं किया जा सकता। यह सब तभी हो सकता है जब पुराना शासक वर्ग ऐतिहासिक तौर पर कालातीत हो गया हो और नया शासक वर्ग उसका स्थान लेने के लिए ऐतिहासिक तौर पर आ उपस्थित हुआ हो। यानि इस संक्रमण के लिए भौतिक परिस्थितियां पहले ही पैदा हो गयी हों। पुराने शासक वर्ग जिस उत्पादन पद्धति की उपज हैं वह कालातीत हो गयी हो और नयी उत्पादन पद्धति ने उसका स्थान ले लिया हो या ले लेने के लिए तैयार हो। वह ऐतिहासिक तौर पर आ उपस्थित हुई हो। मार्क्स के शब्दों में कहें तो:

"स्वयं कार्यभार केवल तभी उपस्थित होता है, जब उसे सम्पन्न करने के लिए जरूरी भौतिक परिस्थितियां पहले से तैयार होती है, या कम से कम तैयार हो रही होती हैं।"
('राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास' की भूमिका)

लेकिन ऐतिहासिक तौर पर किसी वर्ग के कालातीत हो जाने का मतलब यह नहीं होता कि वह एक खास समय विशेष में भी कालातीत हो गया हो। हो सकता है कि वह एक समय विशेष में काफी मजबूत हो और नया उभरता हुआ वर्ग अभी उसके मुकाबले में कमजोर हो। या यह भी हो सकता है नया वर्ग पुराने वर्ग से शक्तिशाली तो है परन्तु इतना शक्तिशाली नहीं कि वह पुराने वर्ग को एक झटके में परास्त कर दे। ऐसे में राज्य सत्ता के लिए संघर्ष भिन्न स्वरूप ग्रहण कर लेता है। खासकर पूंजीपति वर्ग के मामले में, जो स्वभावतः ही समझौता परस्त होता है, यह क्रांति के बदले समझौते का रूप ग्रहण कर लेती है।

जब भी ऐसा होता है, तब राज्य सत्ता में दो वर्गों की मौजूदगी के साथ समाज में भी दो उत्पादन प्रणालियों का एक साथ अस्तित्व मौजूद रहता है हालांकि इनमें से एक प्रधान होती है और दूसरी गौण। अंत में नयी उत्पादन प्रणाली क्रमशः हावी होती चली जाती है तथा पुराने को अंशतः आत्मसात करते हुए, अंशतः उसका उच्छेद करते हुए उसको खत्म कर देती है। इसी के समान्तर राज्य सत्ता मे साझीदार पुराने शासक वर्ग का चरित्र भी बदलता जाता है और अंततः वह नये शासक वर्ग के सांचे में ढल जाता है। उसका पुराने रूप में अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इंग्लैण्ड इसका प्रातिनिधिक उदाहरण है जहां सत्रहवीं शताब्दी में भूस्वामी वर्ग राज्य सत्ता में प्रधान था तथा उसका चरित्र अधिकांशतः सामंती था लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी बीतते-बीतते वह पूर्णतः पूंजीवादी हो गया।

कोई भी नया वर्ग जब सत्तानशीन होता है तब न केवल वह अपनी उत्पादन पद्धति को प्रोत्साहित करता है या उसे स्थापित करता है, बल्कि उसे पुरानी उत्पादन पद्धति के अवशेषों को भी समाप्त करना होता है। क्रांति का चरित्र न केवल इससे तय होता है कि किस वर्ग को राज्य सत्ता से हटाया जा रहा है बल्कि इससे भी तय होता है सत्ता पर कब्जा करने के बाद उत्पादन पद्धति के क्षेत्र में किस कार्यभार को मूलतः अंजाम दिया जा रहा है। यह प्रश्न तब महत्वपूर्ण हो जाता है जब इतिहास की गति किसी समाज विशेष में संकेन्द्रित हो जाती है तथा जिसमें न केवल एक नया वर्ग पुराने सत्तानशीन वर्ग को प्रतिस्थापित करता है बल्कि इस नये वर्ग को भी उससे नया वर्ग प्रतिस्थापित कर देता है। ऐसे में पुराने शासक वर्ग के अनुरूप उत्पादन पद्धति के अवशेषों को समाप्त करने तथा उसके बाद की उत्पादन पद्धति के लिए रास्ता साफ करने की जिम्मेदारी इस दूसरे नये वर्ग के कंधे पर आ पड़ती है। ऐसे में यह दूसरा नया वर्ग मूलतः वह कर रहा होता है जो इसके पहले के नये वर्ग को करना चाहिए था लेकिन जो पहले ही सत्ताच्युत किया जा चुका है। इस स्थिति में क्रांति का मूलभूत प्रश्न राज्य सत्ता का प्रश्न रहते हुए भी क्रांति का चरित्र इस बात से निर्धारित होने लगता है कि उत्पादन पद्धति में किस कार्यभार को अंजाम दिया जा रहा है। यह केवल इस कारण होता है कि अधिरचना और आधार का समान्तर सम्बन्ध यहां टूट जाता है और अधिरचना एक चरण आगे निकल जाती है जबकि आधार वहीं रहता है। सत्ता सर्वहारा के हाथ में चली आती है जबकि बुर्जुआ वर्ग के ऐतिहासिक कार्यभार सामंतवाद का विनाश व जनवाद की स्थापना बचे रहते हैं।

क्रांति में वर्गों की लामबंदी कैसे होगी तथा क्रांति के बाद कौन से कार्यभार कैसे अंजाम दिये जायेंगे, यह केवल इस बात से तय नहीं होता कि सत्ता में कौन से वर्ग काबिज है बल्कि इस बात से भी होता है कि समाज विशेष की विकास की अवस्था क्या है तथा बाकी समाजों और उनमें शासनरत वर्गों से उसका क्या संबंध है। इसी से रणनीति और

रणकौशल की मिन्नताएं व जटिलताएं पैदा होती हैं। इसी से यह हो सकता है कि राज्य सत्ता पर कब्जा करने के लिए जिस वर्ग के खिलाफ लड़ा जा रहा हो, सत्ता पर कब्जा करने के बाद उसी के अनुरूप उत्पादन पद्धति को स्थापित किया जा रहा हो (उदाहरण के लिए 1927 से 1937 के बीच चीन में जब मजदूरों और किसानों के जनवादी अधिनायकत्व का नारा था तथा जब दलाल बुर्जुआ ही नहीं, राष्ट्रीय बुर्जुआ भी शत्रु खेमे में था)।

निः संदेह

"प्रत्येक क्रांति का मुख्य प्रश्न राज्य सत्ता का प्रश्न होता है"।

परन्तु लेनिन ने अगले ही वाक्य में लिखा कि

"किस वर्ग के हाथों में सत्ता है, यह सब कुछ तय करता है।"

यह भी उतना ही सही है। सामंती वर्ग को हटाकर यदि बुर्जुआ वर्ग सत्ता में आ जाय तो वह पूंजीवादी समाज की स्थापना करेगा और समाज को पूंजीवादी रास्ते पर ले जायेगा। परन्तु यदि उस समय उसे सत्ताच्युत कर सर्वहारा सत्ता में आ जाए तो? तब, सर्वहारा समाज को समाजवाद और कम्युनिज्म की ओर ले जाने का प्रयास करेगा। यानि समाज के भावी विकास की दिशा, उसका लक्ष्य क्या होगा, यह सत्तानशीन वर्ग तय करता है। जिस वर्ग के हाथ में सत्ता है, वह सब कुछ तय करता है। परन्तु सर्वहारा वर्ग समाजवाद तक एक छलांग में नहीं पहुंच सकता। भले ही सत्तानशीन सर्वहारा वर्ग का लक्ष्य समाजवाद व कम्युनिज्म हो, परन्तु वह सामंतवाद से वहां सीधे नहीं पहुंच सकता। उसे सामंतवाद के विनाश और जनवाद (पूंजीवाद) की स्थापना से गुजरना पड़ेगा। वह भले ही इस दौर में पूंजीवाद को एकदम नियंत्रित रखे, पर वह उसे लांघ नहीं सकता। यानि ऐसी अवस्था में सत्तानशीन सर्वहारा वर्ग को वह काम करने पड़ेंगे जो दरअसल उसका नहीं, बल्कि उसके शत्रुओं-पूंजीपति वर्ग के काम थे। उसे जनवादी क्रांति करनी पड़गी, बावजूद इसके कि उसने खुद ही बुर्जुआ वर्ग को उखाड़ फेंका है। ऐसे में जब तक यह कार्यभार पूरा नहीं हो जाता और यह मुख्य कार्यभार बना रहता है, तब तक क्रांति जनवादी क्रांति की मंजिल में होती है भले ही सत्ता में सर्वहारा वर्ग हो और वह खुद बुर्जुआ वर्ग से ही लड़कर सत्ता में आया हो।

लेकिन साथ ही यह भी सच है कि जब तक क्रांति जनवादी क्रांति की मंजिल में होती है तब तक इस बात की संभावना होती है कि बुर्जुआ वर्ग या उसका एक हिस्सा कुछ हद तक व कुछ समय के लिए क्रांति के साथ आ जाये यह देश व काल पर निर्भर करता है। इसी तरह बुर्जुआ जनवादी क्रांति कितनी जल्दी पूरी हो जायेगी और समाजवादी कार्यभार कब उपस्थित हो जाऐंगे यानि बुर्जुआ जनवादी क्रांति कब सर्वहारा क्रांति में रूपान्तरित हो जायेगी तथा यह रूपान्तरण हिंसात्मक होगा या शांतिपूर्ण यह इस बात पर निर्भर करता है कि समाज विशेष के विकास की अवस्था क्या है, उसके पूंजीपति वर्ग के विकास की अवस्था क्या है और सर्वहारा के मुकाबले उसकी स्थिति क्या है तथा बाकी दुनिया कहां खड़ी है, उसमें शक्तियों का संतुलन क्या है।

क्रांति के स्वरूप व चरित्र के बारे में इन आम बातों के बाद आइये देखें कि मार्क्स-एंगेल्स के जमाने से लेकर माओ तक ये कैसे बदली है और निर्धारित हुयी है।

II

बुर्जुआ जनवादी क्रांति और समाजवादी क्रांति के अंतर्सम्बंध पर मार्क्स व एंगेल्स

'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र' तैयार करते वक्त ही मार्क्स-एंगेल्स को यह एहसास था कि जर्मनी अभी वहां नहीं खड़ा है जहां सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग का संघर्ष

प्रमुख संघर्ष हो। ऐसे में सर्वहारा की पार्टी की नीति को अलग से प्रस्तुत करना जरूरी था। इस मामले में 1847 में एंगेल्स ने 'कम्युनिज्म के सिद्धान्त' ('कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' का प्रारंभिक प्रारूप) में यह लिखा:

> "आखिर में जर्मनी आता है, जहां पूंजीपति वर्ग तथा राजतंत्र के बीच निर्णायक संघर्ष अब भी बहुत दूर है। परन्तु कम्युनिस्ट चूंकि पूंजीपति वर्ग द्वारा सत्ताधारण करने के बाद ही उसके विरूद्ध निर्णायक संघर्ष करने के भरोसे नहीं बैठे रह सकते, इसलिए यह कम्युनिस्टों के ही हित में है कि वे पूंजीपति वर्ग को सत्ता शीघ्रताशीघ्र हासिल करने में मदद दें ताकि उसे जितनी जल्दी सम्भव हो, उलटा जा सके। अतः कम्युनिस्टों को हमेशा सरकारों के खिलाफ उदारपंथी पूंजीपतियों का साथ देना चाहिए परन्तु इस बारे में सतर्क रहना चाहिए कि वे पूंजीपति वर्ग की ही तरह आत्म-वंचना के शिकार न बने अथवा पूंजीपति वर्ग की मन को लुभाने वाली इन घोषणाओं पर विश्वास न करने लगे कि उसकी विजय से सर्वहारा के लिए लाभदायी फल निकलेंगे। पूंजीपति वर्ग की विजय से कम्युनिस्टों को मात्र ये लाभ हैं: 1. विभिन्न रियायतें जो कम्युनिस्टों के लिए अपने सिद्धान्तों की रक्षा, उन पर विचार-विमर्श तथा उनके प्रसार को अधिक सुगम बनायेंगी तथा इस प्रकार सर्वहारा का एक ठोस, संघर्षशील तथा सुसंगठित वर्ग में एकीकरण किया जा सकेगा, और 2. यह पक्का हो जाएगा कि जिस दिन निरंकुश सरकारों का तख्ता उलट दिया जाएगा, उस दिन से पूंजीपतियों तथा सर्वहाराओं के बीच संघर्ष की बारी आ जायेगी। उस दिन के उपरांत कम्युनिस्टों की पार्टी की नीति वही होगी जो उन देशों में है जहां पूंजीपति वर्ग अभी शासन कर रहा है।" (फ्रेडरिक एंगेल्स, 'कम्युनिज्म के सिद्धान्त', तीन खंडीय हिन्दी संस्करण, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1978, खण्ड-1, भाग-1, पृष्ठ-115-116)

यहां कुछ चीजें एकदम साफ हैं। पूंजीपति वर्ग द्वारा सत्ता पर कब्जा अभी भी बहुत दूर बताया गया है। इसमें सर्वहारा नीति यह निर्देशित की गयी है कि सर्वहारा पूंजीपति को इस कार्य में मदद दे। यानि खुद सर्वहारा सत्तानशीन होने का प्रयास न करे, इसके बाद जाकर ही पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा के बीच वह संघर्ष-दीर्घकालिक संघर्ष - शुरू होगा जिसकी अंतिम परिणति सर्वहारा के सत्ता पर कब्जा करने में होगी। यहां यह दृष्टव्य है कि पूंजीपति वर्ग द्वारा सत्ता पर कब्जा करने के तुरंत बाद सर्वहारा द्वारा सत्ता पर कब्जा करने की बात यहां नहीं की गयी है। यह क्रांति की वह आम रूपरेखा है जो पिछड़े देशों में (जहां जनवादी क्रांति नहीं हुई थी) लेनिन के समय तक कम्युनिस्ट आंदोलन में क्रांति की आम रूप रेखा बनी रही। कहीं 1905 में जाकर लेनिन ने इस रूप रेखा में रूसी परिस्थितियों के हिसाब से परिवर्तन किया। तब दूसरे लोगों ने लेनिन पर स्थापित कार्यनीति से अलग हटने का आरोप लगाया।

एंगेल्स ने यह बात अक्टूबर नवंबर '1847 में कही थी। इसके कुछ ही महीनों बाद यानि जनवरी' 1848 में अंतिम रूप दिये गये 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' में मार्क्स-एंगेल्स ने मूलतः इसी लाइन को प्रस्तुत किया परन्तु भिन्नता यह थी कि इसमें बुर्जुआ क्रांति के बाद होने वाली सर्वहारा क्रांति को अपेक्षाकृत शीघ्र ही होते देखा गया :

> " जर्मनी में जब-जब वहां का पूंजीपति वर्ग निरंकुश राजतंत्र, सामंती भूस्वामियों तथा निम्नपूंजीपतियों के खिलाफ क्रांतिकारी कार्यवाही करता है, तब वे उसके साथ मिलकर लड़ते हैं।
>
> "लेकिन वे मजदूर वर्ग को सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग के शत्रुतापूर्ण विरोध का यथासंभव स्पष्ट रूप से बोध कराने का काम क्षण भर के लिए भी नहीं रोकते, ताकि जर्मन मजदूर उन सामाजिक व राजनीतिक अवस्थाओं को, जिन्हें पूंजीपति वर्ग अपने प्रभुत्व के साथ अनिवार्यतः लागू करेगा, फौरन पूंजीपति वर्ग के विरूद्ध साधन के रूप में, इस्तेमाल करना शुरू कर सकें, ताकि **जर्मनी में प्रतिक्रियावादी वर्गों का तख्ता उलटने के बाद स्वयं पूंजीपति वर्ग के खिलाफ तुरंत ही लड़ाई की शुरूआत हो सके।**
>
> "जर्मनी की ओर कम्युनिस्ट खास तौर से इसलिए ध्यान देते हैं कि वह देश ऐसी पूंजीवादी क्रांति के द्वार पर खड़ा है जो अनिवार्यतः यूरोपीय सभ्यता की अधिक उन्नत अवस्थाओं में, इंग्लैण्ड की सत्रहवीं शताब्दी और फ्रांस की अठारहवीं शताब्दी के मुकाबले एक अधिक उन्नत सर्वहारा को लेकर होगी: और **इसीलिए कि जर्मनी की यह पूंजीवादी क्रांति उसके बाद तुरंत ही होने वाली सर्वहारा क्रांति की उपक्रमाणिका होगी।**" (कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र', वही पृष्ठ-167, जोर हमारा)

यहां भी सर्वहारा द्वारा सत्ता पर कब्जा पूंजीपतियों के सत्तानशीन होने के बाद ही दर्शाया गया है । यहां भी पूंजीपति वर्ग के सत्तानशीन होने में सर्वहारा द्वारा उसकी मदद की बात की गयी है। परन्तु यहां तदुपरांत सत्ता पर सर्वहारा वर्ग द्वारा कब्जा तुरंत ही करने की बात की गयी है। यहां तक कि पूंजीवादी क्रांति को उसके बाद तुरंत ही होने वाली सर्वहारा क्रांति की उपक्रमाणिका (Prelude) कहा गया है।

मार्क्स-एंगेल्स इग्लैण्ड व फ्रांस की जनवादी क्रांतियों से बहुत अच्छी तरह परिचित थे। उन्हें मालूम था कि इन क्रांतियों में निम्न वर्गों ने पूंजीवादी क्रांति की सीमा को लांघने का प्रयास किया था-खासकर फ्रांस में। यही नहीं, उनके इसी प्रयास के जरिये ही ये जनवादी क्रांतियां अपनी परिणतियों तक पहुंची। पूंजीपति वर्ग तो आधे रास्ते में ही रूक जाना चाहता था।

अब जबकि जर्मनी में क्रांति यूरोपीय सभ्यता की अधिक उन्नत अवस्था में तथा अधिक उन्नत सर्वहारा को लेकर हो रही थी तब स्वाभाविक था कि निम्न वर्गों और खासकर सर्वहारा का प्रयास और अधिक दूर तक जाता। यह देखते हुए कि इग्लैण्ड और फ्रांस में पहले ही सर्वहारा वर्ग की समाजवादी क्रांति एजेण्डे पर आ चुकी थी, जर्मनी के सर्वहारा वर्ग का यह प्रयास सफलता की ओर जाता। यानि सर्वहारा वर्ग की मदद से पूंजीपति वर्ग के सत्ता में पहुंचने के साथ ही सर्वहारा वर्ग (पहले की तरह ही) आगे बढ़ जाता और इस बार वह सर्वहारा क्रांति करने में सफल हो जाता।

इस तरह मार्क्स-एंगेल्स ने 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र' में बुर्जुआ क्रांति के तुरंत बाद सर्वहारा क्रांति के होने के सतत क्रांति के सिद्धान्त को निरूपित किया हालांकि उन्होंने इस शब्द का इस्तेमाल नहीं किया। यहां याद रखना जरूरी है कि यह बुर्जुआ जनवादी क्रांति पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व में होनी थी तथा इसमें पूंजीपति वर्ग को सत्तानशीन होना था।

यहां एक चीज काबिलेगौर है, और वह है निम्न पूंजीपतियों के प्रति दृष्टिकोण। 'घोषणा पत्र' छोटे कारखानेदार, दस्तकार, छोटे व्यापारी, किसान सभी को निम्न पूंजीपति वर्ग में रखता है और उन्हें क्रांतिकारी नहीं रूढ़िवादी घोषित करता है। यहां तक कि वह उन्हें प्रतिगामी कहता है क्योंकि वे इतिहास के चक्र को पीछे घुमाने की कोशिश करते हैं। (वहीं,पृष्ठ-142) 'घोषणापत्र' इनके खिलाफ पूंजीपतिवर्ग के संघर्ष में पूंजीपति वर्ग की मदद करने की बात करता है। यह उस रणनीति और रणकौशल से एकदम भिन्न है जो बीसवीं सदी की क्रांति में निम्न पूंजीपति वर्ग के प्रति अपनाई गयी। हां, इसकी शुरूआत 1880 व 1890 के दशक में ही हो गयी थी।

जनवरी', 1848 तक मार्क्स-एंगेल्स जर्मनी के पूंजीपति वर्ग को क्रांतिकारी मानते

थे। वे सोचते थे कि वह क्रांति करके सत्ता में आएगा और तब सर्वहारा वर्ग उसे सत्ताच्युत कर देगा। लेकिन 1848 की क्रांति ने (जो मार्च में शुरू हुयी) एक भिन्न ही नजारा पेश किया। उसने दिखाया कि पूंजीपति वर्ग एकदम शक्तिहीन है। वह सत्ता पर कब्जा कर लेने के बाद भी उसका कोई क्रांतिकारी इस्तेमाल करने में अक्षम है।

दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग उसके मुकाबले बहुत अधिक क्रांतिकारी निकला। उसने ठेलकर पूंजीपति वर्ग को सत्ता में पहुंचा दिया परन्तु पूंजीपति वर्ग ने क्रांति से गद्दारी कर दी। इससे मार्क्स-एंगेल्स इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पूंजीवाद एकदम सठिया गया है और समाजवाद बिल्कुल पास है तथा सर्वहारा क्रांति वक्त की मांग है। तब उन्होंने अपनी रणनीति और रणकौशल इस मूल्यांकन पर आधारित किया ।

इस काल के बारे में पश्यदृष्टि से देखते हुए 1852 में एंगेल्स ने लिखा :

"... अपने घोषणा पत्र (1848 में प्रकाशित) के सिद्धान्तों के अनुसार .. (कम्युनिस्ट) पार्टी ने कभी यह कल्पना नहीं की थी कि वह किसी भी समय तथा अपनी इच्छानुसार उस क्रांति को जन्म देने में सक्षम है जिसे उसके विचारों को क्रियान्वित करना है। उसने 1848 के क्रांतिकारी आंदोलनों को जन्म देने वाले कारणों तथा उन्हें विफल बनाने वाले कारणों का अध्ययन किया। समस्त राजनीतिक संघर्षों की जड़ में वर्गों के सामाजिक वैर भाव को स्वीकार करते हुए उसने उन परिस्थितियों का अध्ययन किया जिनके अन्दर समाज के एक वर्ग को किसी राष्ट्र के पूरे हितों का प्रतिनिधित्व करने और इस प्रकार उस पर राजनीतिक दृष्टि से शासन करने का आह्वान किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। इतिहास ने कम्युनिस्ट पार्टी को बताया कि मध्य युग में अभिजात भू-स्वामियों के बाद कैसे प्रथम पूंजीपतियों की धन की शक्ति ने जन्म लिया तथा सरकारों की बागडोर छीन कर अपने हाथ में ले ली: पूंजीपतियों के इस वित्तीय भाग के सामाजिक प्रभाव तथा राजनीतिक प्रभुत्व को भाप के प्रचलन के बाद औद्योगिक पूंजीपतियों की बढ़ती ताकत ने कैसे उलट दिया, और कैसे इस समय दो और वर्ग, छोटा व्यवसायी वर्ग और औद्योगिक मजदूर वर्ग प्रभुत्व की मांग कर रहे हैं। 1848-1849 के व्यावहारिक क्रांतिकारी अनुभव ने उन सैद्धान्तिक तर्कों की पुष्टि की, जिनके परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला गया कि इससे पहले कि कम्युनिस्ट मजदूर वर्ग अपने को स्थाई रूप से सत्तारूढ़ करने तथा उजरती दासता की उस प्रणाली को, जो उसे पूंजीपति वर्ग के जुए के नीचे रखती है, नष्ट करने की उम्मीद करें, निम्नपूंजीवादी जनवाद को अपनी बारी मिलनी चाहिए।..." (फेडरिक एंगेल्स, 'कालोन में हाल का मुकदमा', वही, खण्ड-1, भाग-2, पृष्ठ -118-119, जोर मूल में)

स्थिति के इस मूल्यांकन के साथ मार्च' 1850 में मार्क्स, एंगेल्स ने कम्युनिस्ट लीग के नाम केन्द्रीय समिति के संदेश में यह लाइन सूत्रित की:

"भाइयो, हमने 1848 में ही कह दिया था कि जर्मन उदारपंथी पूंजीपति वर्ग बहुत जल्दी सत्तारूढ़ होगा और अपनी नवप्राप्त सत्ता को मजदूरों के विरूद्ध लक्षित करेगा। आपने देख लिया है कि यह किस तरह पूरा हुआ है...

"और इस भूमिका को, सरासर गद्दारी भरी इस भूमिका को, जो 1848 में जर्मन उदारपंथी पूंजीपति वर्ग ने जनता के विरूद्ध अदा की थी, आसन्न क्रांति में जनवादी निम्न पूंजीपति वर्ग अपनाएगा जिसने इस समय विपक्ष में वही स्थिति ग्रहण की है जो 1848 से पहले उदारपंथी पूंजीपति वर्ग की थी।...

"जर्मनी में निम्न पूंजीवादी जनवादी पार्टी बहुत सशक्त है, उसमें केवल

नगरों के पूंजीवादी निवासियों की बहुसंख्या, उद्योग तथा व्यापार के छोटे लोग तथा शिल्पी संघ के मालिक ही नहीं हैं, उसके अनुयाइयों में तो किसान तथा देहाती सर्वहारा भी उस हद तक शामिल हैं जिस हद तक देहाती सर्वहारा को अभी स्वतंत्र शहरी सर्वहारा का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ है।

"निम्न पूंजीवादी जनवादियों के साथ क्रांतिकारी मजदूर पार्टी का संबन्ध इस प्रकार है-वह उनके साथ उस धड़े के खिलाफ मिलकर चलती है जिसे उलटना उसका लक्ष्य है, वह हर उस चीज के मामले में उनका विरोध करती है जिसकी मदद से वे अपने हितार्थ अपनी स्थिति मजबूत बनाने का प्रयास करते हैं।...

... "जनवादी निम्न पूंजीपति वर्ग जहां यथाशीघ्र तथा हद से हद उपरिलिखित मांगों की पूर्ति के साथ क्रांति का समापन करने चाहते हैं, वहां हमारे हित तथा हमारे कार्यभार इस बात में निहित हैं कि जब तक कमोबेश तमाम सम्पत्ति धारी वर्गों को उनकी आधिपत्यकारी स्थिति से बाहर नहीं धकेल दिया जाता, जब तक सर्वहारा वर्ग सत्ता हासिल नहीं कर लेता, एक ही देश में नहीं वरन् दुनिया के समस्त प्रभुत्वशाली देशों में सर्वहाराओं का साहचर्य जब तक इतना आगे नहीं बढ़ जाता कि इन देशों के सर्वहाराओं के बीच प्रतियोगिता बन्द हो जाय तथा कम से कम निर्णायक उत्पादक शक्तियां सर्वहाराओं के हाथों में केन्द्रित हो जायें, **तब तक हम क्रांति को स्थाई बनाएं।**

... उनका (मजदूरों का) युद्धनाद हो, **"क्रांति स्थाई हो।"** (कार्ल मार्क्स, फेडरिक एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट लीग के नाम केन्द्रिय समिति का संदेश', वही, खण्ड-1, भाग-1, पृष्ठ-218-229, जोर हमारा)

यहां नीति स्पष्ट है। यहां निम्न पूंजीपतियों द्वारा शुरू की गई क्रांति को (जो अपने चरित्र में बुर्जुआ जनवादी क्रांति ही हो सकती है) स्थाई (Permanent) बनाने की बात की गई है जिससे सर्वहारा सत्तानशीन हो सके और समाजवाद कायम कर सकें।

यहां यह भी स्पष्ट है कि निम्नपूंजीपति वर्ग के बारे में पहले से भिन्न रूख अपनाया गया है। यदि पहले पूंजीपति वर्ग के साथ मिलकर इससे लड़ने की बात थी (क्योंकि वह वस्तुगत तौर पर रूढ़िवादी और प्रतिगामी होता है) तो अब इसके साथ मिलकर पूंजीपति वर्ग के खिलाफ लड़ने की नीति निर्धारित की जा रही है (क्योंकि इस समय इसकी वास्तविक भूमिका क्रांतिकारी हो गयी थी)। नीति में यह परिवर्तन मार्च' 1848 के घटनाक्रम के कारण हुआ। पूंजीपति वर्ग क्रांति से गद्दारी कर भाग खड़ा हुआ जबकि निम्न पूंजीपति वर्ग क्रांति के लिए आगे आ गया। मार्क्स-एंगेल्स की यह नीति इस बात का शानदार उदाहरण है कि कैसे वे ठोस परिस्थितियों के अनुरूप अपनी रणनीति और रणकौशल को तुरंत बदल लिया करते थे।

मार्च' 1850 में मार्क्स व एंगेल्स जर्मनी में सर्वहारा क्रांति और समाजवाद को कितना नजदीक मानते थे, इसका उदाहरण इस 'संदेश' में उनका किसानों के प्रति अपनाया गया रूख है । इसमें उन्होंने किसानों को जमींदारों की जमीनें को बांटे जाने का विरोध किया।

"मजदूरों को देहाती सर्वहारा के हितार्थ तथा स्वयं अपने हितार्थ इस योजना *[किसानों को सामंती भूमि स्वतंत्र सम्पत्ति के रूप में देना – लाल सलाम]* का विरोध करना होगा। उन्हें मांग करनी चाहिए कि छीनी गयी सामंती भूमि राजकीय भूमि बनी रहे तथा उसे मजदूरों की ऐसी बस्तियों में परिणत कर दिया जाये जहां संयुक्त देहाती सर्वहारा बड़े पैमाने की कृषि के सारे लाभों के साथ खेती कर सकें, जिसके माध्यम से सार्वजनिक सम्पत्ति का सिद्धान्त लड़खड़ाते पूंजीवादी सम्पत्ति-सम्बंधों के बीच तत्काल सुदृढ़ आधार प्राप्त कर सकें। जिस तरह जनवादी लोग किसानों के साथ मिलते

है ठीक उसी तरह मजदूरों को देहाती सर्वहारा के साथ मिलना चाहिए।..." (वही, पृष्ठ-226)

लेकिन मार्क्स-एंगेल्स का आसन्न बुर्जुआ तथा तत्पश्चात् तुरंत सर्वहारा क्रांति का यह आकलन सही साबित नहीं हुआ। न केवल जर्मनी में ही अपितु फ्रांस तक में अभी सर्वहारा वर्ग इस स्थिति में नहीं था कि सत्ता पर कब्जा कर सकें।

उपरोक्त नीतियों में एक चीज सहज ही दृष्टव्य है - वह है किसानों के प्रति मार्क्स-एंगेल्स का रूख। मार्क्स-एंगेल्स किसानों को निम्नपूंजीपति वर्ग का ही एक हिस्सा मानकर, उसके साथ उसी तरह व्यवहार करते हैं। यह इसके बावजूद कि वे किसानों द्वारा बुर्जुआ जनवादी क्रांतियों में निभाई गयी भूमिका से भली-भांति वाकिफ थे - बुर्जुआ जनवादी क्रांति अपने अंतर्य में किसान क्रांति होती है।

इन नीतियों में किसान यदि कहीं है तो बुर्जुआ क्रांति के साथ। सर्वहारा क्रांति केवल सर्वहारा का कार्यभार है। ऐसा नहीं है कि सर्वहारा किसानों के साथ मिलकर जनवादी क्रांति करेगा जो बाद में सर्वहारा क्रांति में संक्रमण कर जायेगी (जैसा कि नयी जनवादी क्रांति की अवधारणा में होता है)।

लेकिन किसानों के प्रति मार्क्स-एंगेल्स का यह रूख शीघ्र ही बदल गया। 1856 में एंगेल्स को लिखे गये अपने पत्र में मार्क्स ने कहा:

> "...जर्मनी में सारी बात सर्वहारा क्रांति का किसान युद्ध के किसी दूसरे संस्करण द्वारा समर्थन किये जाने की संभावना पर निर्भर करेगी। तब स्थिति शानदार होगी।..." (मार्क्स का एंगेल्स को पत्र, 16 अप्रैल 1856, वही, खंड-1, भाग-2, पृष्ठ-298)

यह किसानों के प्रति सर्वथा भिन्न रूख है। इसमें सर्वहारा क्रांति केवल सर्वहारा द्वारा किये जाने के बदले, इसका किसान क्रांति द्वारा समर्थन किये जाने की बात है। किसी ऐसे देश में जहां सर्वहारा अत्यल्प संख्या में हों तथा किसान बहुसंख्या में, वहां इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता भी नहीं है। यही नहीं, चूंकि जर्मनी में अभी बुर्जुआ जनवादी क्रांति नहीं हुयी थी तथा बुर्जुआ जनवादी क्रांति सारतः किसान क्रांति ही होती है, अतः किसानों का क्रांति में बड़ी मात्रा में शिरकत करना स्वाभाविक होता। अब जनवादी क्रांति को पूंजीपति वर्ग तो नेतृत्व देने से रहा। ऐसे में सर्वहारा वर्ग ही इस क्रांतिका नेतृत्व कर सकता था क्योंकि अलग-अलग बिखरा हुआ और पिछड़ी उत्पादन शक्तियों से बंधा हुआ किसान खुद उस क्रांति का नेतृत्व नहीं कर सकता था जो उसे मुक्ति प्रदान करती। इस जनवादी क्रांति के पूरा होने के बाद क्रांति सर्वहारा क्रांति में प्रवेश कर जाती।

उस समय मार्क्स और एंगेल्स ने इसे इसी रूप में सूत्रित नहीं किया लेकिन 50 साल बाद लेनिन ने इस महत्वपूर्ण बिन्दु को पकड़ा और अपनी 'दो कार्यनीतियों' में इसे विकसित किया।

III

बुर्जुआ जनवादी क्रांति और सर्वहारा समाजवादी क्रांति के अंतर्संबंध पर लेनिन

हम देख आये हैं कि बुर्जुआ जनवादी क्रांति व सर्वहारा क्रांति के अंतर्सम्बंध के मामले में मार्क्स व एंगेल्स ने दो भिन्न रणनीति अख्तियार की। पहले तो उन्होंने यह माना कि बुर्जुआ वर्ग जनवादी क्रांति कर सत्तानशीन होगा और तब सर्वहारा वर्ग उसके खिलाफ

संघर्ष शुरू करेगा जो लम्बे समय बाद सर्वहारा द्वारा सत्ता पर कब्जे तक पहुंचेगा। खुद बुर्जुआ जनवादी क्रांति में सर्वहारा वर्ग बुर्जुआ वर्ग की मदद करेगा। बाद में जब क्रांति शुरू हो गयी और बुर्जुआ वर्ग ने क्रांति के साथ गद्दारी का परिचय दिया तो मार्क्स-एंगेल्स ने यह नीति अपनाई कि सर्वहारा वर्ग द्वारा सत्ता पर कब्जा आसन्न है तथा वह निम्न पूंजीपति वर्ग द्वारा शुरू की जाने वाली क्रांति को आगे बढ़ाकर उसे सर्वहारा क्रांति तक पहुंचा देगा।

बीसवीं सदी की शुरूआत में जब रूसी क्रांति में रणनीति और रणकौशल की बात उठी तो स्थिति वहां उसी तरह जटिल पाई गयी जैसी 1850 के आस-पास जर्मनी में थी। यहां पूंजीवाद पूर्व के सामाजिक संबन्धों के अवशेष विद्यमान थे। राजनीतिक क्षेत्र में जार की निरंकुशशाही थी। जनवादी क्रांति नहीं हुई थी। ऐसे में सवाल उठा कि मजदूरों की पार्टी की क्रांति में रणनीति और रणकौशल क्या हो?

इसका जवाब लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविकों ने एक तरह से दिया और मेन्शेविकों ने दूसरी तरह से। मेन्शेविकों ने रूढ़िवादी स्थिति अपनाई। उन्होंने कहा कि रूस इस समय बुर्जुआ जनवादी क्रांति की मंजिल में है। इस बुर्जुआ जनवादी क्रांति का नेतृत्व बुर्जुआ वर्ग करेगा। सर्वहारा वर्ग इस क्रांति में बुर्जुआ वर्ग की मदद करेगा। जब बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में यह बुर्जुआ जनवादी क्रांति हो जायगी तो सर्वहारा सत्तानशीन पूंजीपति वर्ग के खिलाफ संघर्ष शुरू करेगा और एक लम्बे संघर्ष के बाद वह सत्ता पर कब्जा करेगा। यानि मजदूर पार्टी का फौरी कार्यभार बनता था बुर्जुआ जनवादी क्रांति में बुर्जुआ वर्ग की मदद करना।

साथ ही उनका यह भी कहना था कि हमें यह देखना चाहिए कि कहीं सर्वहारा वर्ग अपने क्रांतिकारी जोश से बुर्जुआ वर्ग को डरा न दे। यदि ऐसा हुआ तो बुर्जुआ वर्ग डर कर क्रांति से पीछे हट जायेगा और बुर्जुआ जनवादी क्रांति पूरी नहीं हो पायेगी।

लेनिन ने इस प्रस्थापनाओं का खण्डन किया और घोषित किया कि केवल कायर और स्वार्थी बुर्जुआ को किनारे लगाकर ही बुर्जुआ जनवादी क्रांति को सही मायने में पूरा किया जा सकता है। और इसके लिए सर्वहारा को बुर्जुआ जनवादी क्रांति का नेतृत्व खुद ग्रहण करना चाहिए तथा किसान वर्ग को अपने साथ लेना चाहिए। यानि बुर्जुआ जनवादी क्रांति बुर्जुआ वर्ग के बिना, उसके बावजूद की जानी थी।

लेनिन लिखते हैं:

> "अपने सामाजिक तथा आर्थिक अंतर्य के कारण रूस की जनवादी क्रांति बुर्जुआ क्रांति है। इस सही मार्क्सवादी प्रस्थापना को केवल दोहराना ही काफी नहीं है। उसे समझने में समर्थ होना आवश्यक है और राजनीतिक नारों पर लागू करने में समर्थ होना आवश्यक है। उत्पादन के वर्तमान, अर्थात् पूंजीवादी उत्पादन संबन्धों पर आधारित आमतौर से सारी राजनीतिक स्वतंत्रता बुर्जुआ स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता की मांग सबसे पहले बुर्जुआ वर्ग के हितों को अभिव्यक्त करती है। उसी के प्रतिनिधियों ने पहले-पहल यह मांग उठाई थी। उसके समर्थकों ने जो स्वतंत्रता हासिल की, उसका उपयोग हर जगह उन्होंने मालिकों की तरह किया है, उसे संयमी तथा नपे-तुले बुर्जुआ सांचे में ढाला, उसे शांति काल में क्रांतिकारी सर्वहारा वर्ग के बहुत ही सूक्ष्म और तूफानी दौर में बहुत ही पाशविक दमन के साथ जोड़ा है।" (लेनिन, 'जनवादी क्रांति में सामाजिक जनवाद की दो कार्यनीतियां', दस खंडीय हिन्दी संस्करण, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1981, खण्ड-3, पृष्ठ-133-134)

तो क्या इस बुर्जुआ जनवादी क्रांति का सर्वहारा के लिए कोई मतलब नहीं है। नहीं। यह है और बहुत महत्वपूर्ण है।

> "जनवादी क्रांति बुर्जुआ क्रांति है। आम भूमि पुनर्वितरण का या जमीन और आजादी का नारा-उस किसान अवाम का सबसे व्यापक नारा, जो उत्पीड़न और

जाहिल होते हुए भी बड़ी व्यग्रता के साथ प्रकाश तथा खुदा के लिए लालायित है- बुर्जुआ नारा है। परन्तु हम मार्क्सवादियों को यह जानना चाहिए कि सर्वहारा वर्ग तथा किसानों की वास्तविक स्वतंत्रता के लिए बुर्जुआ स्वतंत्रता तथा बुर्जुआ प्रगति के रास्ते को छोड़कर न तो कोई दूसरा रास्ता है और न ही हो सकता है। हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता के अलावा, जनवादी जनतंत्र के अलावा, सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व के अलावा इस समय समाजवाद को निकटतर लाने का न तो कोई दूसरा साधन है और न ही हो सकता है।..." (वही, पृष्ठ-135)

परन्तु सर्वहारा वर्ग तथा किसानों का क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व कैसे कायम होगा? उसमें बुर्जुआ वर्ग की क्या भूमिका होगी?

"...या तो हमें जनता के साथ मिलकर असंगत, स्वार्थी तथा कायर बुर्जुआ वर्ग के **बावजूद** क्रांति की तामील तथा जारशाही पर पूर्ण विजय-प्राप्ति की कोशिश करनी चाहिए, या फिर हम इस "बावजूद" को नहीं स्वीकार करते और इस बात से डरते हैं कि बुर्जुआ वर्ग कहीं क्रांति से "मुंह" न "फेर ले", उस सूरत में हम बुर्जुआ वर्ग की खातिर-सर्वहारा वर्ग तथा जनता के साथ विश्वासघात करते हैं।" (वही, पृष्ठ-118, जोर मूल में)

"...हम सभी मार्क्सवादी सिद्धान्त के कारण और अपने उदारतावादियों, जेम्स्त्वोवालों और 'ओस्वोबोज्देनिये' - पंथियों को हर दिन, हर घड़ी देखते रहने के कारण इस बात को जानते हैं, कि बुर्जुआ वर्ग क्रांति का समर्थन करने के मामले में असंगत, स्वार्थी और कायर होता है। ज्योंही बुर्जुआ वर्ग के संकुचित, स्वार्थपूर्ण हित पूरे हो जायेंगे, त्योंही वह सुसंगत जनवाद से "मुंह फेर लेगा" **(और वह इस समय भी उससे मुंह फेरने लगा है !)**, त्यों ही उसका मुख्य भाग अनिवार्यतः अपना रूख प्रतिक्रांति की तरफ, एकतंत्र शासन की तरफ, क्रांति के खिलाफ और जनता के खिलाफ कर लेगा। फिर रह जाती है "जनता" अर्थात् सर्वहारा वर्ग और किसान, अकेले सर्वहारा वर्ग पर ही भरोसा किया जा सकता है कि वह आखिर तक जाएगा क्योंकि वह जनवादी क्रांति से बहुत आगे जाता है। यही कारण है कि सर्वहारा वर्ग सबसे आगे रहकर जनतंत्र के लिए लड़ता है और इस मूर्खतापूर्ण और अनुपयुक्त सलाह को तिरस्कार के साथ ठुकरा देता है कि उसे सावधान रहना चाहिए कि कहीं वह बुर्जुआ वर्ग को डरा कर भगा न दे। किसानों के अंदर बहुत बड़ी संख्या में अर्ध-सर्वहारा तथा निम्न बुर्जुआ तत्व भी होते हैं। इस कारण वह भी अस्थिर होता है और सर्वहारा वर्ग को मजबूर कर देता है कि वह शुद्ध रूप से अपनी वर्गीय पार्टी में संगठित हो। परन्तु किसानों की अस्थिरता बुर्जुआ वर्ग की अस्थिरता से मूलतः भिन्न है, क्योंकि इस समय किसानों को निजी मिलकियत के नितांत संरक्षण में उतनी दिलचस्पी नहीं है, जितनी बड़ी-बड़ी जागीरों की जब्ती में, जो निजी मिलकियत का एक प्रमुख रूप है। इस वजह से किसान समाजवादी तो नहीं बनते और वे निम्न बुर्जुआ बने रहते हैं, पर उनमें जनवादी क्रांति का पूर्ण तथा उग्रतम पक्षधर बनने की क्षमता होती है। किसान अनिवार्य रूप से इस तरह के पक्षधर बन जायेंगे, बशर्ते कि उनमें जागृति फूंकने वाली क्रांतिकारी घटनाओं की अग्रगति को बुर्जुआ वर्ग का विश्वासघात और सर्वहारा वर्ग की पराजय असमय रोक न दे। इस शर्त के पूरा होने पर किसान अनिवार्य रूप से क्रांति और जनतंत्र की प्रमुख शक्ति बन जायेंगे, केवल पूर्णतः विजयी क्रांति ही किसानों को कृषि सुधारों के क्षेत्र में **सब कुछ** दे सकती है-**वह सब कुछ** जो किसान चाहते हैं, जिसका वे स्वप्न देखते हैं और जिसकी सचमुच उन्हें (पूंजीवाद के उन्मूलन के नहीं, जैसा कि "समाजवादी-क्रांतिकारी"

समझते हैं, बल्कि) इसलिए जरूरत है कि वे अर्द्ध-भूदासता की दलदल से, उत्पीड़न तथा गुलामी के अंधकार से बाहर निकल सकें, कि अपने जीवन की परिस्थितियों को उस हद तक सुधार सकें, जिस हद तक यह माल उत्पादन की व्यवस्था के अंतर्गत संभव हो।" (वही, पृष्ठ-119-120, जोर मूल में)

आगे जनवादी जनतंत्र में किसानों को होने वाले फायदों को गिनाने के बाद लेनिन लिखते हैं:

"यही कारण है कि वर्ग के रूप में बुर्जुआ वर्ग स्वभावतः तथा अनिवार्यतः उदारवादी-राजतंत्रवादी पार्टी की छत्रछाया में आ जाने की कोशिश करता है, जबकि किसान समूह के रूप में क्रांतिकारी तथा जनतंत्रवादी पार्टी के नेतृत्व में आने की चेष्टा करते हैं। यही कारण है कि बुर्जुआ वर्ग जनवादी क्रांति को उसकी चरम सीमा तक नहीं ले जा सकता, जबकि किसान वैसा करने की क्षमता रखते हैं और उसमें हमें उनकी सहायता करने की पूरी कोशिश करनी चाहिए।" (वही, पृष्ठ-121)

इस संबंध में मेंशेविकों की आलोचना करते हुए लेनिन लिखते हैं:

"जो लोग विजयी रूसी क्रांति में किसानों की भूमिका को सचमुच समझते हैं, वे कभी यह नहीं कह सकते कि यदि बुर्जुआ वर्ग उससे मुंह फेर लेगा, तो क्रांति की व्यापकता कम हो जाएगी। कारण की रूसी क्रांति में असली व्यापकता वस्तुतः उसी समय आनी शुरू होगी, उसमें बुर्जुआ जनवादी क्रांति के युग में अधिकतम संभव क्रांतिकारी व्यापकता सचमुच उसी समय आयेगी, जब बुर्जुआ वर्ग उसकी तरफ से मुंह फेर लेगा और जब किसान सर्वहारा वर्ग के कंधे से कंधा मिलाकर सक्रिय क्रांतिकारियों के रूप में सामने आयेंगे।..." (वही,पृष्ठ- 122)

अंत में लेनिन इन सारी बातों को इस रूप में सूत्रित करते हैं:

"सर्वहारा वर्ग को चाहिए कि वह एकतंत्र के प्रतिरोध को बल पूर्वक कुचल देने और बुर्जुआ वर्ग की अस्थिरता को निश्चक्त बना देने के लिए किसान अवाम को अपने साथ मिलकर जनवादी क्रांति को परिणति तक पहुंचाएं । सर्वहारा वर्ग को चाहिए कि वह बुर्जुआ वर्ग के प्रतिरोध को बलपूर्वक कुचल देने और किसानों तथा टुटपुंजिया वर्ग की अस्थिरता को निश्क्त बना देने के लिए आबादी के अर्द्ध सर्वहारा तत्वों को अपने साथ मिलकर समाजवादी क्रांति को पूरा करे।..."(वही, पृष्ठ -122)

इसमें से पहले को लेनिन ने सर्वहारा वर्ग तथा किसानों का क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व कहा था व दूसरे को सर्वहारा अधिनायकत्व ।

लेनिन की क्रांति की यह नीति मार्क्स-एंगेल्स की 1848-1850 की नीतियों से भिन्न है। इसमें क्रांति के नेता की भूमिका सर्वहारा वर्ग को सौंपी गयी है चाहे क्रांति जनवादी क्रांति को मंजिल में ही क्यों न हो। जनवादी क्रांति को बुर्जुआ वर्ग के भरोसे छोड़ने के बदले यहां आहवान किया गया है कि सर्वहारा वर्ग खुद इस क्रांति का नेतृत्व करे तथा इसके लिए किसानों को अपने साथ ले जो जनवादी क्रांति को पूरा करने में दिलचस्पी रखते हैं। इस बुर्जुआ जनवादी क्रांति को बुर्जुआ वर्ग के **बावजूद** पूरा करना है क्योंकि स्वभावतः स्वार्थी, असंगत और कायर बुर्जुआ वर्ग अनिवार्यतः इस क्रांति से आगे चलकर गद्दारी कर देगा। सर्वहारा वर्ग द्वारा किसानों के साथ मिलकर अपने नेतृत्व में बुर्जुआ क्रांति को पूरा करने की लेनिन की थीसिस मजदूर आंदोलन में एकदम नयी थीसिस थी जिसने पहले के सारे सूत्रों को उलट दिया। इसके चिन्ह ज्यादा से ज्यादा 1856 के मार्क्स के पूर्व उद्धृत पत्र में ही खोजे जा सकते हैं।

लेनिन की इस अभिनव थीसिस का आधार क्या था? यह आधार था 1905 में रूस में बुर्जुआ जनवादी क्रांति के समय पूंजीवाद का अपेक्षाकृत ज्यादा विकास (1650 के

इंग्लैण्ड, 1790 के फ्रांस या 1850 के जर्मनी के मुकाबले), रूसी पूंजीपति वर्ग की बहुत कमजोर स्थिति तथा उसके मुकाबले मजदूर वर्ग की मजबूत स्थिति और विकसित पूंजीवादी देशों में मजबूत मजदूर आंदोलन। इन स्थितियों में रूसी पूंजीपति वर्ग यह हिम्मत नहीं कर सकता था कि वह बुर्जुआ जनवादी क्रांति को पूर्णता तक पहुंचाए क्योंकि ऐसा करने के लिए उसे सर्वहारा वर्ग को साथ लेना पड़ता जो फिर अपनी बंदूकें उस पर तान देता। 1905 का सर्वहारा वर्ग इस स्थिति में था कि वह तुरंत ही बंदूक एक कन्धे से बदलकर दूसरे पर रख लेता। दूसरे, रूसी पूंजीपति वर्ग यह भी जानता था कि रूसी जारशाही यूरोपीय प्रतिक्रियावाद का सबसे मजबूत स्तंभ थी। ऐसे में क्रांति द्वारा इसके धराशायी होते ही यूरोप में क्रांतियों की आंधी आ जाती और वह समूचे यूरोप से बुर्जुआ वर्ग का सत्ता गोल कर देती, रूसी बुर्जुआ की तो बात ही क्या। रूसी बुर्जुआ वर्ग यह जानता था, इसीलिए वह क्रांति से भयभीत था, क्रांति से गद्दारी करने के लिए तैयार था।

यहां याद रखना आवश्यक है कि बुर्जुआ वर्ग अपने स्वभाव से ही समझौता परस्त होता है। वह क्रांति मजबूरी में करता है और हर क्षण क्रांति से गद्दारी करने के लिए तैयार रहता है। निम्न वर्गों द्वारा जरा सा भी खतरा होते ही वह पुराने शासक वर्गों से समझौता कर लेता है। पूंजीवाद का विकास होने के साथ-साथ पूंजीपति वर्ग की यह प्रवृति बढ़ती जाती है। वह क्रांति से अधिकाधिक दूर तथा और ज्यादा समझौता परस्त होता जाता है। रूस में 1905 में भी बुर्जुआ वर्ग के साथ यही बात थी।

मेंशेविकों की गलती यह थी कि उन्होंने न तो बुर्जुआ वर्ग के आम समझौतापरस्त चरित्र को समझा और न ही उसके और ज्यादा समझौतापरस्त होते जाते रूप को। उनके लिए वह जड़ चरित्र का वर्ग था और वह भी 1789 का फ्रांसीसी चरित्र वाला। उन्होंने 1850 में जर्मनी पूंजीपति वर्ग के बारे में और बाद में सभी पूंजीपतियों के बारे में ('फ्रांस में वर्ग संघर्ष,' 'अठाहरवीं ब्रूमेर' इत्यादि) मार्क्स-एंगेल्स द्वारा कही गयी बातों पर ध्यान नहीं दिया। यदि उन्होंने रूसी बुर्जुआ वर्ग की कमजोरी स्वीकारी भी तो इस रूप में कि मजदूरों को अपनी क्रांतिकारी कार्यवाहियों से उसे डरा नहीं देना चाहिए।

लेकिन मजदूर वर्ग के नेतृत्व में सम्पन्न होने वाली बुर्जुआ जनवादी क्रांति का भावी सर्वहारा क्रांति से क्या संबंध होता? मजदूरों-किसानों के क्रांतिकारी अधिनायकत्व का सर्वहारा अधिनायकत्व के साथ क्या संबंध होता? बुर्जुआ जनवादी क्रांति से सर्वहारा क्रांति तक कैसे पहुंचते जबकि दोनों में नेतृत्व सर्वहारा का ही था?

'दो कार्यनीतियों' में लेनिन ने इस बारे में यह कहा:

> "आखिरी बात, न्यूनतम कार्यक्रम की तामील का कार्यभार अस्थाई क्रांतिकारी सरकार के जिम्मे करके प्रस्ताव अधिकतम कार्यक्रम की तत्काल तामील और **समाजवादी क्रांति के लिए सत्ता पर कब्जा करने के बारे में बेहूदा अर्द्ध-अराजकतावादी विचारों को बिल्कुल खत्म कर देता है।** रूस के आर्थिक विकास के स्तर (वस्तुपरक स्थिति) और व्यापक सर्वहारा समूहों की वर्ग चेतना तथा संगठन के स्तर के कारण (आत्मपरक परिस्थिति, जो वस्तुपरक परिस्थिति से अभिन्न रूप से बंधी हुयी है) **मजदूर वर्ग की पूर्ण मुक्ति फौरन असंभव है।** केवल बिलकुल अज्ञानी लोग ही प्रस्तुत जनवादी क्रांति के बुर्जुआ चरित्र की उपेक्षा कर सकते हैं: केवल बिलकुल भोले आशावादी ही इस बात को भुला सकते हैं कि मजदूर समूहों को समाजवाद के उद्देश्यों तथा उसे प्राप्त करने के उपायों के बारे में अभी तक कितनी कम जानकारी है। हम सबका यह दृढ़ विश्वास है कि मजदूरों की मुक्ति स्वयं मजदूरों के ही हाथों हो सकती है, **जब तक आम वर्ग-चेतन और संगठित न हो जायें, जब तक वे पूरे बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ खुले**

> **वर्ग संघर्ष की शिक्षा प्राप्त करके उसमें अभ्यस्त न हो जायें, तब तक समाजवादी क्रांति का सवाल ही पैदा नहीं हो सकता।..."** (वही, पृष्ठ-31, जोर हमारा)

यहां बात कुछ इस तरह से प्रस्तुत की गई है मानो जनवादी क्रांति के बाद एक लम्बा अंतराल होगा जिसमें जनवाद की स्थितियों में सर्वहारा बुर्जुआ वर्ग से वर्ग संघर्ष कर उसमें दीक्षित होगा तथा इस दीक्षा के पूरा होने के बाद वह बुर्जुआ वर्ग का तख्ता पलटेगा और सर्वहारा राज तथा समाजवाद की स्थापना करेगा। यानि जनवादी क्रांति के समय मजदूर वर्ग का फौरी काम समाजवाद की स्थापना नहीं होगा। वह दूर भविष्य की चीज होगी।

एक दूसरे लेख में, जो 'दो कार्यनीतियों' के पहले लिखा गया था, लेनिन ने यह बात कही थी कि विजयी रूसी बुर्जुआ जनवादी क्रांति कुछ महीनों तक नहीं बल्कि वर्षों तक चलेगी तथा वह यूरोप में सर्वहारा क्रांतियों को जन्म देगी। यूरोप की ये सर्वहारा क्रांतियां अपनी बारी में पुन : रूस लौटेंगी और रूस में सर्वहारा क्रांति तथा समाजवाद के निर्माण के कार्य को अंजाम देंगी। रूस में समाजवाद का निर्माण यूरोप के विजयी सर्वहारा वर्ग की मदद से होगा। यह दशकों तक चलेगा।

अंत में लेनिन रूस में सतत् क्रांति के सिद्धान्त पर पहुंचे। 'दो कार्यनीतियों' के बाद लिखे गये लेख 'किसान आंदोलन के प्रति सामाजिक जनवाद का रूख' में लेनिन ने लिखा:

> "...जनवादी क्रांति के पूर्णतः विजयी हो जाने की हालत में ...जनवादी क्रांति से हम फौरन ही और अपनी शक्तियों के पैमाने के अनुरूप, वर्ग चेतन और चेतन संगठित सर्वहारा वर्ग की शक्तियों के पैमाने के अनुरूप **समाजवादी क्रांति में संक्रमण करना प्रारंभ कर देंगे। हम निरंतर क्रांति के पक्षपाती हैं।** हम आधे रास्ते में रूकने वाले नहीं हैं।..." (लेनिन, 'किसान आंदोलन के प्रति सामाजिक जनवाद का रूख', वही, खण्ड-3, पृष्ठ-193, जोर हमारा)

क्रांति हो जाने के बाद लेनिन ने पश्च दृष्टि के साथ इस बारे में यह लिखा :

> "ठीक वही हुआ, जो हमने कहा था। क्रांति के विकासक्रम ने हमारे तर्क के सही होने की पुष्टि कर दी। शुरू में "पूरे" किसान समुदाय के साथ राजतंत्र के विरूद्ध, जमींदारों के विरूद्ध, मध्युगीनता के विरूद्ध (और उस हद तक क्रांति बुर्जुआ, बुर्जुआ जनवादी क्रांति बनी रहती है)। **फिर,** गरीब किसानों के साथ, अर्द्ध सर्वहाराओं के साथ, सारे शोषितों के साथ, देहात के अमीरों, कुलकों, मुनाफाखोरों समेत **पूंजीवाद के विरूद्ध** और उस हद तक क्रांति **समाजवादी** बन जाती है। पहली और दूसरी क्रांतियों के बीच कोई कृत्रिम, चीनी दीवाल खड़ी करने, सर्वहारा वर्ग की तैयारी की मात्रा और गरीब किसानों के साथ उसकी एकता की मात्रा के **अलावा** किसी और चीज से उन्हें एक-दूसरे से अलग करने का प्रयत्न करना मार्क्सवाद का भयानक विकृतीकरण करना, उसे बाजारू बनाना, उसके स्थान पर उदारतावाद को प्रतिस्थापित करना है।"
> (लेनिन, 'सर्वहारा क्रांति और गद्दार काउत्स्की', वही, खण्ड-8, पृष्ठ-168, जोर मूल में)

लेनिन की यह कार्यनीति फरवरी, 1917 से अक्टूबर, 1917 के बीच व्यवहार में सही साबित हुई लेकिन उसने व्यवहार में अपना विशिष्ट स्वरूप ग्रहण किया। फरवरी, 1917 में जारशाही समाप्त हुई और मजदूरों-सैनिकों की सोवियतों (किसान सोवियतों के साथ) की सत्ता के रूप में मजदूरों - किसानों का क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व कायम हुआ। पर राजकीय सत्ता बुर्जुआ वर्ग के हाथ में चली गई। इस तरह दुहरी सत्ता का उदय हुआ। बुर्जुआ वर्ग ने बुर्जुआ जनवाद के ज्यादातर कामों को अंजाम नहीं दिया - भूमि का वितरण आदि। इसी से उस समय ज्यादातर बोल्शेविक यह सोचते थे कि हम अभी जनवादी क्रांति की मंजिल में ही हैं। परन्तु लेनिन ने कहा कि अब हम बुर्जुआ जनवादी क्रांति के दायरे में बुर्जुआ क्रांति के बचे हुए कार्यभारों को पूरा नहीं कर सकते। हमें आगे जाना होगा। केवल

समाजवादी क्रांति कर के ही बुर्जुआ क्रांति के बाकी कार्यभारों को हम अंजाम दे सकते हैं।

> "परन्तु रूस के जनगण के लिए बुर्जुआ जनवादी क्रांति की उपलब्धियां सुदृढ़ कर सकने के वास्ते हमें आगे बढ़ना पड़ा था और हम आगे बढ़े। हमने बुर्जुआ जनवादी क्रांति के प्रश्नों को चलते-चलते बिना किसी तैयारी के, अपने मुख्य तथा वास्तविक **सर्वहारा-क्रांतिकारी**, समाजवादी कार्य के 'उपोत्पाद' के रूप में हल किया..."
> (लेनिन, 'अक्टूबर क्रांति की चौथी वर्षगांठ', वही खण्ड-10, पृष्ठ-207, जोर मूल में)

गौरतलब यह है कि इस समय बहस में लेनिन ने यह तर्क नहीं दिया कि चूंकि बुर्जुआ वर्ग सत्तानशीन हो गया है अतः बुर्जुआ जनवादी क्रांति का समय बीत गया है और हम समाजवादी क्रांति के चरण में प्रवेश कर गये हैं। इसके बदले उन्होंने यह कहा कि अब बुर्जुआ जनवादी क्रांति के दायरे में ही बुर्जुआ कार्यभारों को अंजाम नहीं दिया जा सकता। इन्हें करने के लिए आगे जाना होगा। यहां सवाल बुर्जुआ क्रांति को बाधित करने वाले सत्तानशील बुर्जुआ वर्ग को केवल उखाड़ फेंकने का नहीं था बल्कि बुर्जुआ क्रांति की सीमा से भी आगे जाने का था। साथ ही यहां सवाल तुरंत समाजवादी निर्माण का नहीं था। यह तो कदम-दर-कदम ही हो सकता था। लेकिन इसे हाथ में लिए बिना जनवादी क्रांति के भी कार्यभार पूरे नहीं हो सकते थे।

रूस में जनवादी क्रांति के तुरंत बाद समाजवादी क्रांति इसलिए संभव हो सकी कि सामंती अवशेषों के बावजूद रूसी पूंजीवाद वहां सापेक्षतः काफी विकसित था। 1905 से लेकर 1917 के दौर में तो वह और भी विकसित हो गया। और यह हुआ था कई सुधारों के तहत। लेनिन ने 1906 में ही लिखा था:

> "...यह नहीं भुलाया जाना चाहिए कि भूदासता के अवशेषों के विरुद्ध हमारा सारा संघर्ष सर्वहारा वर्ग के आम समाजवादी उद्देश्यों की तुलना में एक विशेष तथा अस्थाई कार्यभार है। यदि शीपोव मार्का "सांविधानिक शासन" रूस में 10-15 वर्ष जारी रहा, तो ये अवशेष लुप्त हो जायेंगे, अपने आप कालकवलित हो जायेंगे। कोई सशक्त जनवादी किसान आंदोलन तब असंभव हो जाएगा और भूदासता की व्यवस्था के अवशेषों को मिटाने के उद्देश्य से किसी प्रकार के कृषि कार्यक्रम की पैरवी नहीं की जा सकेगी।" (लेनिन, 'मजदूर पार्टी के कृषि कार्यक्रम का संशोधन', वही, खण्ड-3, पृष्ठ-264)

रूस में शीपोव मार्का 'सांविधानिक शासन' तो नहीं हुआ लेकिन स्तोलिपीन सुधार जरूर हुए। इन सुधारों ने रूस में पूंजीवाद का तेज विकास किया। इसके चलते भूदासता व मध्ययुगीनता के अवशेष पूरी तरह समाप्त तो नहीं हुए परन्तु वे काफी कम और कमजोर हो गये, इतने कि बुर्जुआ जनवादी क्रांति से तुरंत, ही 8 महीने के भीतर समाजवादी क्रांति की यात्रा पूरी कर ली गयी। यदि पूंजीवाद का विकास काफी कमजोर होता तो यह संभव न होता और तब दोनों क्रांतियों के बीच बड़ा अंतराल होता और क्रांति भिन्न रास्ता अख्तियार करती जैसा कि चीन की नवजनवादी क्रांति में हुआ।

यहां एक बात और भी ध्यान रखने की है। रूस में अपनी इस नीति को लेनिन ने कार्यनीति (Tactics) का नाम दिया। आज हम क्रांति के एक चरण में वर्गों की लामबंदी को आम तौर पर रणनीति बोलते हैं। स्टालिन ने 'लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त' तथा अन्यत्र रणनीति को इसी रूप में परिभाषित किया तथा रणनीति को स्पष्ट करने के लिए रूसी क्रांति में वर्गों की लामबंदी को उदाहरण के तौर पर पेश किया। तब फिर लेनिन ने उसे कार्यनीति का नाम क्यों दिया? क्योंकि लेनिन रूस में बुर्जुआ जनवादी क्रांति और उसके कार्यभारों को अस्थाई चीज मानते थे जबकि स्थाई और दूरगामी कार्यभार था समाजवाद।

कार्यनीति के बारे में लेनिन ने कहा है:

> "...कार्यक्रम मजदूर और अन्य वर्गों के बीच आम और बुनियादी संबंधों को निर्धारित करता है। कार्यनीति विशेष तथा अस्थाई संबंधों को निर्धारित करती है।..." (वही, पृष्ठ, 263-264)

बुर्जुआ जनवादी कार्यभारों से कार्यनीति के जरिए निपटने की यह बात दिखाती है कि लेनिन रूस में इस कार्यभार को एकदम अस्थाई कार्यभार मानते थे। खासकर 1905-07 की क्रांति के दौरान तो यह और भी अस्थाई दिखाई देता था। जो भी हो, इस कार्यभार को अस्थाई मानना ही अपने आप बहुत कुछ कह देता है।

यदि लेनिन और बोल्शेविक पार्टी ने बुर्जुआ जनवादी क्रांति और उसके बाद होने वाली समाजवादी क्रांति के बारे में मजदूर आंदोलन में प्रचलित सूत्रीकरणों से अलग अवस्थिति अपनाई तो पार्टी के बारे में वे उसी रास्ते पर चलते रहे जो पहले की परिपाटी थी। बोल्शेविक पार्टी मूलतः बड़े औद्योगिक शहरों के मजदूरों पर आधारित पार्टी थी। देहाती इलाके में इसका प्रभाव बहुत कम था। बहुत सचेत तौर पर बोल्शेविक पार्टी सभी के बीच कार्य करने की बात करती थी- मजदूर, किसान, बुद्धिजीवी, अध्यापक, सैनिक, कंगाल, भिखमंगे, नौकर, आवारा, वेश्याएं सभी- पर पार्टी का मुख्य आधार औद्योगिक मजदूरों में होना था। इस मायने में बोल्शेविक पार्टी अपने वर्ग की पार्टी - मजदूर वर्ग की पार्टी - थी।

IV

उपनिवेशों में बुर्जुआ जनवादी क्रांति और सर्वहारा समाजवादी क्रांति के अंतर्सम्बन्ध पर कौमिन्टर्न और स्टालिन

यदि रूस एक पिछड़ा हुआ पूंजीवादी देश था जिसमें बुर्जुआ जनवादी क्रांति के कार्यभार बचे हुए थे तो बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में उपनिवेश और अर्द्ध-उपनिवेश और भी पिछड़े हुए थे। उनमें से कुछ में बहुत थोड़ा पूंजीवादी विकास हुआ था और बाकी में तो यह न के बराबर था। ऐसे में इन देशों में बुर्जुआ जनवादी क्रांति के कार्यभार और प्रमुख हो जाते थे तथा समाजवादी क्रांति और दूर की चीज बन जाती थी।

कौमिन्टर्न ने अपनी स्थापना के समय से ही उपनिवेशों और अर्ध-उपनिवेशों में क्रांति के सवाल को प्रमुखता से लिया और समय-समय पर नीति-निर्देशक प्रस्थापनाएं प्रस्तुत कीं। इन प्रस्थापनाओं ने इन देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों को अपनी नीति निर्धारित करने में बहुत मदद की।

उपनिवेशों और अर्ध-उपनिवेशों के मामले में कौमिन्टर्न की समूची नीति मूलतः इसकी दूसरी कांग्रेस में स्वीकृत थीसिसों पर आधारित रही। इस कांग्रेस में लेनिन ने इस सवाल पर एक थीसिस पेश की जिसे कुछ संशोधनों के साथ स्वीकार कर लिया गया। इस थीसिस के साथ एम.एन.रॉय की थीसिस को पूरक थीसिस के रूप में स्वीकार किया गया।

अपनी औपनिवेशिक थीसिस में लेनिन उपनिवेशों और अर्ध-उपनिवेशों के बारे में कहते हैं:

> "(11). ज्यादा पिछड़े राज्यों और राष्ट्रों के संदर्भ में जिनमें सामंती या पितृसत्तात्मक और पितृसत्तात्मक-कृषक संबंध प्रधान हैं, इसे ध्यान में रखना विशेष तौर पर महत्वपूर्ण है:
> पहला, सभी कम्युनिस्ट पार्टियों को इन देशों में बुर्जुआ जनवादी मुक्ति आंदोलनों की

मदद करनी चाहिए ..." (V.I.Lenin. 'Draft Thesis on National and Colonial Question'. Collected Works. Progress Publishers. Moscow. 1977. Vol-31. Page-149. अनुवाद हमारा)

बाद में बहस के उपरांत "बुर्जुआ जनवादी मुक्ति आंदोलनों" को "राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन" कह दिया गया। यह इसलिए कि, हालांकि राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का अंतर्य बुर्जुआ जनवादी है, परन्तु इस आंदोलन में सक्रिय क्रांतिकारियों का सुधारवादियों से फर्क किया जा सके।

इन बुर्जुआ जनवादी मुक्ति आंदोलनों का भविष्य क्या था? मुक्ति के बाद इन्हें पूंजीवादी रास्ते पर जाना था या कि किसी अन्य रास्ते पर। इस सवाल पर इसी कांग्रेस में राष्ट्रीय व औपनिवेशिक आयोग की रिपोर्ट पेश करते हुए लेनिन ने कहा:

> "...क्या हम इस दावे को सही मान सकते हैं कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास की पूंजीवादी मंजिल उन पिछड़े हुए जनगण के लिए अपरिहार्य है, जो इस समय स्वतंत्र हो रहे हैं तथा जिनके बीच इस समय, युद्ध के उपरांत, प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने के लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं? हमने इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया। यदि क्रांतिकारी विजयी सर्वहारा वर्ग उनके बीच व्यवस्थित ढंग से प्रचार करे, सोवियत सरकारें अपने पास उपलब्ध सारे साधनों से उनकी सहायता करने के लिए आगे बढ़ें, तो यह मानना गलत होगा कि पिछड़ी हुई जातियों के लिए विकास की पूंजीवादी मंजिल अपरिहार्य है। समस्त औपनिवेशिक तथा पिछड़े हुए देशों में न केवल योद्धाओं के स्वतंत्र दस्तों, पार्टी संगठनों का गठन किया जाना चाहिए, न केवल किसान सोवियतों के संगठन के हेतु तत्काल प्रचार शुरू किया जाना चाहिए तथा उन्हें प्राकपूंजीवादी परिस्थितियों के अनुकूल ढालने का प्रयत्न किया जाना चाहिए, अपितु कम्युनिस्ट इंटरनेशनल को यह प्रस्थापना प्रस्तुत करनी तथा सैद्धान्तिक तौर से उसकी पुष्टि भी करनी होगी कि अग्रगामी देशों के सर्वहारा वर्ग की सहायता से पिछड़े हुए देश सोवियत व्यवस्था की ओर तथा विकास के निश्चित चरणों से होते हुए, विकास की पूंजीवादी मंजिल को लांघते हुए कम्युनिज्म की ओर बढ़ सकते हैं।" (लेनिन, 'कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की दूसरी कांग्रेस', वही, खण्ड-10, पृष्ठ-46-47)

यह वह बुनियादी प्रस्थापना है जिसे बाद में कौमिन्टर्न और उपनिवेशों-अर्द्धउपनिवेशों की सभी कम्युनिस्ट पार्टियों ने अपनाया। इस प्रस्थापना में निहित है कि न केवल रूस जैसे एक पिछड़े यूरोपीय पूंजीवादी देश में बल्कि एशिया-अफ्रीका-अमेरिका के उपनिवेशों-अर्ध उपनिवेशों जैसे सामंती - अर्द्ध सामंती देशों में भी अब बुर्जुआ जनवादी क्रांति का नेतृत्व मजदूर वर्ग करेगा। यदि यह वर्ग और उसकी पार्टी बुर्जुआ जनवादी मुक्ति आंदोलन पर अपना प्रभुत्वकारी नेतृत्व कायम कर लेते हैं तो वे फिर विकसित देशों के सर्वहारा वर्ग की मदद से पूंजीवाद को लांघते हुए कम्युनिज्म की ओर जा सकते हैं।

कौमिन्टर्न की छठी कांग्रेस ने अपने विस्तृत कार्यक्रमों में इन प्रस्थापनाओं को विस्तारित किया तथा और ज्यादा ठोस शकल दी। आइये देखें।

> "औपनिवेशिक और अर्ध-औपनिवेशिक देश (चीन, भारत इत्यादि) तथा निर्भर देश (अर्जेन्टीना, ब्राजील इत्यादि), जिनमें थोड़े से, और कुछ मामलों में ज्यादा, विकसित उद्योग हैं, परन्तु ज्यादातर मामलों में वे समाजवादी निर्माण के लिए अपर्याप्त हैं: जिनमें सामंती मध्ययुगीन संबंध हैं, अथवा इनकी अर्थव्यवस्थाओं और राजनीतिक अधिरचना में 'उत्पादन की एशियाई पद्धति' के संबंध हैं; तथा जिनमें उद्योग, वाणिज्य तथा बैंकिंग के प्रधान उद्यम, यातायात के प्रधान साधन, बड़ी जमीनी सम्पत्तियां (लटीफुंडिया), बागान इत्यादि विदेशी साम्राज्यवादी समूहों के हाथों में केन्द्रित हैं। इन देशों में एक

ओर तो प्रधान कार्यभार हैं सामंतवाद और पूंजीवाद पूर्व के शोषण के रूपों के खिलाफ लड़ना तथा व्यवस्थित ढंग से कृषि क्रांति को विकसित करना, दूसरी ओर राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए विदेशी साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ना। एक नियम के रूप में, इन देशों का सर्वहारा अधिनायकत्व में संक्रमण तैयारी की मंजिलों की एक समूची शृंखला के जरिए ही होगा, बुर्जुआ जनवादी क्रांतियों के समाजवादी क्रांति में रूपान्तरण के एक समूचे काल के परिणाम के बतौर, जबकि ज्यादातर मामलों में सफल समाजवादी निर्माण तभी संभव होगा जब उन देशों से सीधी सहायता प्राप्त की जाए जिनमें सर्वहारा अधिनायकत्व कायम है।" ('Programme of Communist International, Adopted at the Sixth Congress in 1928', Documents of Communist- Movement in India', A CPI (M) Publication, National Book Agency, Calcutta, 1997, Vol-I, Page-833, अनुवाद हमारा)

> "औपनिवेशिक और अर्ध औपनिवेशिक देशों में विद्यमान क्रांतिकारी संघर्षों की विशिष्ट स्थितियों में सर्वहारा तथा किसानों के जनवादी अधिनायकत्व के लिए तथा इस अधिनायकत्व के सर्वहारा अधिनायकत्व में रूपान्तरण के लिए अनिवार्यतः जरूरी संघर्ष के लम्बे दौर, और अंततः संघर्ष के राष्ट्रीय पहलू के निर्णायक महत्व इन देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों पर कई सारे विशिष्ट कार्यभार डाल देते हैं जो कि सर्वहारा अधिनायकत्व के लिए तैयारी की मंजिलें हैं।.....
>
> "उन औपनिवेशिक और अर्ध-औपनिवेशिक देशों में जिनमें सर्वहारा संघर्ष का नेता है तथा जिसका संघर्ष पर प्रभुत्व स्थापित है, वहां सच्ची बुर्जुआ जनवादी क्रांति सर्वहारा क्रांति में विकसित हो जायेगी-उसी मात्रा में जिसमें संघर्ष विकसित होता है तथा और ज्यादा तीक्ष्ण हो जाता है (बुर्जुआ द्वारा तोड़-फोड़, तोड़-फोड़ करने वाले बुर्जुआ की सम्पत्ति की जब्ती जो अनिवार्यतः समूचे बड़े पैमाने के उद्योग के राष्ट्रीयकरण तक जाता है)। उन उपनिवेशों में जहां सर्वहारा नहीं है, साम्राज्यवाद के प्रभुत्व को उखाड़ फेंकने का मतलब है, जनता (किसानों) की सोवियतों के शासन की स्थापना, विदेशी साम्राज्यवादियों के उद्यमों तथा जमीन की जब्ती और राज्य को उसका हस्तांतरण।" (वही, पृष्ठ-834-835, अनुवाद हमारा)

> "उपनिवेशों में बुर्जुआ जनवादी क्रांति एक स्वतंत्र देश में बुर्जुआ जनवादी क्रांति से इस मायने में मुख्यतः भिन्न है कि यह साम्राज्यवादी प्रभुत्व के खिलाफ राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों से आवयविक तौर पर जुड़ी होती है। राष्ट्रीय कारक सभी उपनिवेशों में तथा उन अर्ध-उपनिवेशों में भी, जिनमें साम्राज्यवादी गुलामी अपने नंगे रूप में सामने आ चुकी है, क्रांति की प्रक्रिया पर काफी प्रभाव डालता है तथा जन समुदायों को विद्रोह की तरफ ले जाता है। एक ओर तो राष्ट्रीय उत्पीड़न क्रांतिकारी वर्गों के परिपक्व होने को तेज करता है, मजदूरों और किसानों के जन समुदायों के असंतोष को मजबूत करता है, उनकी गोलबंदी में मदद करता है और क्रांतिकारी जन विद्रोहों को एक सच्चे लोकप्रिय विद्रोह की भूचाली ताकत व चरित्र प्रदान करता है। दूसरी ओर, राष्ट्रीय कारक, न केवल मजदूर वर्ग और किसानों के आंदोलन को, बल्कि सभी क्रांतिकारी वर्गों के दृष्टिकोण को प्रभावित करने में सक्षम है जिससे क्रांति की प्रक्रिया के दौरान इनका रूप परिवर्तित हो जाता है। सबसे पहले, पेटी बुर्जुआ बुद्धिजीवियों के साथ गरीब शहरी पेटी बुर्जुआ पहले कतार में सक्रिय क्रांतिकारी शक्तियों

के प्रभाव में काफी हद तक आ जाता है, दूसरे, बुर्जुआ जनवादी क्रांति में औपनिवेशिक बुर्जुआ की स्थिति अभी भी ज्यादातर हिचकिचाहटपूर्ण होती है और क्रांति के विकास के साथ इसका ढुलमुलपन स्वतंत्र देश के बुर्जुआ के मुकाबले और भी ज्यादा होता है (उदाहरण स्वरूप 1905-17 के काल में रूसी बुर्जुआ)। ... राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के साथ-साथ कृषि क्रांति मुख्य औपनिवेशिक देशों में बुर्जुआ जनवादी क्रांति की धुरी होती है।" ('Revolutionary Movement in Colonies and Semi-Colonies, Theis Adopted by the Sixth Congress of the Comintern', 1928 वही, पृष्ठ 927-928. अनुवाद हमारा)

"सभी उपनिवेशों तथा अर्ध-उपनिवेशों की तरह चीन और भारत में भी, उत्पादक शक्तियों श्रम के सामाजीकरण का विकास का स्तर अपेक्षाकृत नीचा है। यह परिस्थिति तथा विदेशी प्रभुत्व और सामंतवाद और पूंजीवाद पूर्व के अवशेषों की उपस्थिति इन देशों में क्रांति की पहली मंजिल के चरित्र को तय कर देती हैं। इन देशों के क्रांतिकारी आंदोलनों में हमें बुर्जुआ जनवादी क्रांति से निपटना है यानि ऐसी मंजिल से जो सर्वहारा अधिनायकत्व और सर्वहारा क्रांति के पूर्वाधार तैयार करने का परिचायक है। ..." (वही, पृष्ठ-925, अनुवाद हमारा)

"साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष में भारतीय कम्युनिस्टों का मूलभूत कार्यभार देश की मुक्ति, सामंतवाद के सभी अवशेषों का खात्मा, कृषि क्रांति तथा सोवियत गणतंत्र के रूप में मजदूरों किसानों के जनवादी अधिनायकत्व की स्थापना है।" (वही, पृष्ठ-959-960, अनुवाद हमारा)

उपनिवेशों और अर्धउपनिवेशों के बारे में इन प्रस्थापनाओं की बुनियादी बात यह है कि यद्यपि इन देशों में क्रांति का चरित्र बुर्जुआ जनवादी ही है, परन्तु इस बुर्जुआ जनवादी क्रांति की धुरी कृषि क्रांति के साथ-साथ राष्ट्रीय मुक्ति क्रांति भी है। यही वह मुख्य फर्क भी है जो इसे रूसी क्रांति से अलग करता है। रूस न केवल एक स्वतंत्र देश था बल्कि खुद साम्राज्यवादी भी था । स्वभावतः ही, उस क्रांति में कोई राष्ट्रीय मुक्ति तत्व नहीं था।

लेकिन इन गुलाम देशों में राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न क्रांति के दो मुख्य प्रश्नों में से एक था। इसने इन देशों की क्रांतियों को बहुत ज्यादा प्रभावित किया। सबसे बड़ा फर्क तो बुर्जुआ वर्ग की भूमिका पर ही पड़ा। इन देशों का बुर्जुआ रूसी बुर्जुआ के मुकाबले बहुत कमजोर था। फलतः क्रांति में उनकी भूमिका और भी ढुलमुल होनी थी जितनी रूस में थी। उसे और ज्यादा समझौतापरस्त होना था। दूसरी ओर वह साम्राज्यवाद से उत्पीड़ित था (उसका एक हिस्सा)। ऐसे में उसकी क्रांति में वह भूमिका बनती थी जो रूसी क्रांति में नहीं बनती थी।

छठी कांग्रेस ने यह भी चिन्हित किया कि इस बुर्जुआ का एक हिस्सा साम्राज्यवाद का दलाल है (व्यापारी बुर्जुआ) जबकि दूसरा क्रांति का समर्थक (औद्योगिक बुर्जुआ)। लेकिन इसका भी क्रांति के प्रति रूख ढुलमुल रहता है।

कौमिन्टर्न ने यह भी चिन्हित किया राष्ट्रीय मुक्ति का कारक होने के कारण इन देशों में बुर्जुआ जनवादी क्रांतियां बहुत वेगवान रूप ग्रहण कर लेती हैं और शहरी पेटी बुर्जुआ तबके भी क्रांति के भंवर में आ जाते हैं। यानि राष्ट्रीय कारक के चलते मजदूरों-किसानों के अलावा बाकी बचे वर्गों की भी क्रांतिकारी भूमिका कुछ बढ़ जाती है।

इस फर्क को रेखांकित करने के अलावा कौमिन्टर्न ने जो अन्य प्रस्थापनाएं पेश की वे रूसी क्रांति के ही अनुरूप थी। यह कहा गया कि क्रांति के बाद इन देशों में

मजदूरों-किसानों का क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व कायम होगा जो मजदूर वर्ग के नेतृत्व में होगा। इसी तरह यह अधिनायकत्व तैयारी के कई चरणों से गुजर कर सर्वहारा अधिनायकत्व में तब्दील हो जाएगा। यह रूपान्तरण कैसे होगा, यह प्रश्न नहीं उठाया गया लेकिन कुछ इस तरह के संकेत दिये गये कि बुर्जुआ वर्ग से निपटने के प्रयास में क्रांति आगे बढ़ेगी और समूचे बुर्जुआ वर्ग के विनाश तक पहुंच जायेगी। हां, यह बात जरूर कही गयी कि यह रूपान्तरण तैयारी के कई चरणों से गुजरेगा यानि रूपान्तरण का काल काफी लम्बा होगा तथा इसे सफल होने के लिए समाजवादी देशों की सहायता आवश्यक होगी।

यहां यह स्पष्ट है कि कौमिन्टर्न की ये प्रस्थापनाएं रूसी क्रांति के अनुभव को उपनिवेशों - अर्धउपनिवेशों की विशेष परिस्थितियों यानि साम्राज्यवाद का प्रभुत्व और इनके पिछड़ेपन के अनुरूप ढालने की कोशिश हैं। इनका सारतत्व वही है जो रूसी क्रांति का था।

एक अन्य मामले में भी ये प्रस्थापनाएं कड़ाई से उसी रास्ते का अनुसरण करती है जिस पर रूसी पार्टी चली थी। यह है कम्युनिस्ट पार्टी के आधार और सामाजिक बनावट का मामला। कौमिन्टर्न बहुत जोर देकर इस बात को कहता है कि कम्युनिस्ट पार्टियों के काम को मजदूर वर्ग में केन्द्रित होना चाहिए।

"अनुभव ने यह दिखाया है कि ज्यादातर औपनिवेशिक और अर्ध-औपनिवेशिक देशों में, आन्दोलन के पहले चरण में, पार्टी का, यदि प्रधान नहीं तो, एक महत्वपूर्ण हिस्सा पेटी बुर्जुआ और खासकर, क्रांति की ओर झुके हुए पढ़े-लिखे तबके, बहुत अक्सर छात्रों से आता है ।..... औपनिवेशिक और अर्ध औपनिवेशिक देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों का यह कर्तव्य है वे स्वयं मजदूर वर्ग से पार्टी कारकूनों को पैदा करने के लिए अपना सारा जोर लगाएं । इसमें उन्हें पार्टी सदस्यों -बुद्धिजीवियों का प्रचार मंडलों तथा कानूनी और गैर कानूनी पार्टी स्कूलों में नेता तथा व्याख्यानकर्ता के रूप में इस्तेमाल करना चाहिए जिससे नेतृत्वकारी मजदूरों में से लेनिनवाद की भावना से सराबोर जरूरी उद्वेलक, प्रचारक, संगठनकर्ता तथा नेता शिक्षित किए जा सकें । औपनिवेशिक देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों को अपनी सामाजिक बनावट में भी सर्वहारा पार्टियां बन जाना चाहिए । अपनी पांतों में क्रांतिकारी पढ़े - लिखे तबके के सबसे अच्छे तत्वों को भर्ती करते हुए तथा रोजमर्रा के संघर्ष और बड़ी क्रांतिकारी लड़ाइयों में तपते हुए, कम्युनिस्ट पार्टियों को अपना मुख्य ध्यान पार्टी संगठन को फैक्टरियों और खदानों में, परिवहन मजदूरों तथा बागानों के अर्ध - गुलामों में मजबूत करने के कार्यभार में लगाना चाहिए । जहां कहीं भी पूंजीवाद मजदूरों को इकट्ठा करता है, जिसमें मजदूर वर्ग की झुग्गी-झोपड़ियां फैक्टरियों की बड़ी-बड़ी मजदूर बैरकें, बैरकों की तरह के बागान शामिल हैं तथा जिन्हें इतनी कड़ाई से मजदूर वर्ग के उद्वेलकों से सुरक्षित रखा जाता है, कम्युनिस्ट पार्टी को अपना केन्द्रक स्थापित करना चाहिए । न ही छोटे दस्तकारी वर्कशापों में लगे हुए जमींमेन, अप्रेन्टिसों तथा कुलियों में काम की अवहेलना करनी चाहिए।" (वही, पृष्ठ-950-951, अनुवाद हमारा)

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के बारे में कौमिन्टर्न यह निर्देश देता है:

"अंतः पार्टी काम के क्षेत्र में पार्टी को प्रतिक्रियावाद द्वारा नष्ट किये गये पार्टी केन्द्रकों और स्थानीय पार्टी कमेटियों को पुनः स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए, पार्टी की सामाजिक बनावट को बेहतर बनाने का प्रयास करना चाहिए और ऐसा करने में बड़ी फैक्टरियों, वर्कशापों और रेलवे शापों की महत्वपूर्ण उत्पादन शाखाओं में पार्टी केन्द्रक के निर्माण पर विशेष ध्यान देना चाहिए। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को गांव के संगठन की सामाजिक बनावट को भी नियमित करने की ओर गंभीर ध्यान देना चाहिए जिससे इन संगठनों में मूलतः गांव के सर्वहारा, अर्ध-सर्वहारा तथा

सबसे गरीब तत्वों से भर्ती हो।..." (वही, पृष्ठ-958, अनुवाद हमारा)

और फिर भारत के संदर्भ में,

"...(भारत की) कम्युनिस्ट पार्टी के उद्वेलन का काम मजदूरों की फौरी मांगों के संघर्ष के साथ जुड़ा हुआ होना चाहिए, साथ ही उन्हें उन आम लक्ष्यों तथा उन्हें प्राप्त करने के तरीकों के बारे में बताया जाना चाहिए जो कम्युनिस्ट पार्टी ने तय किए हैं। यह अत्यावश्यक है कि विभिन्न औद्योगिक व अन्य उद्यमों में पार्टी केन्द्रक स्थापित किए जाये, तथा इन्हें मजदूर आंदोलन, हड़तालों और राजनीतिक प्रदर्शनों के आयोजन व संचालन में सक्रिय भाग लेना चाहिए। कम्युनिस्ट संगठन को बिल्कुल शुरूआत से ही मजदूरों से नेतृत्वकारी पार्टी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने के काम पर विशेष ध्यान देना चाहिए।" (वही, पृष्ठ-960-961, अनुवाद हमारा, जोर मूल में)

उपरोक्त निर्देशों में बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि कम्युनिस्ट पार्टियों को अपना काम औद्योगिक मजदूरों में केन्द्रित करना चाहिए तथा मजदूरों में से ही पार्टी कार्यकर्ता विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा करके उन्हें अपनी सामाजिक बनावट बेहतर बनानी चाहिए यानि मजदूर प्रधान पार्टी का निर्माण करना चाहिए। गांवों में काम के बारे में भी यही बात की गयी है कि वहां पार्टी की भर्ती सर्वहारा व गरीब तबकों से हो। जैसा कि हम आगे देखेंगे, यह चीनी क्रांति के अनुभव की बिल्कुल उलटी दिशा में है।

आइये, अब हम उपनिवेशों और अर्ध-उपनिवेशों की क्रांतियों के संबंध में स्टालिन के विचार देखें जो मुख्यतः चीन के संदर्भ में कहे गये हैं क्योंकि 1925-27 के दौर में चीनी क्रांति सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी और कौमिन्टर्न में बहस का एक प्रमुख मुद्दा थी। ये विचार मूलतः वही है जो कौमिन्टर्न के हैं, लेकिन इनमें कुछ विषयों पर ज्यादा प्रकाश डाला गया है।

उपनिवेशों में साम्राज्यवादी देशों की क्रांति से होने वाली भिन्नता को चिन्हित करते हुए स्टालिन कहते हैं।

"...साम्राज्यवादी देशों में क्रांति एक चीज है: इन देशों में बुर्जुआ दूसरे देशों का उत्पीड़क है, यहां वह क्रांति की सभी मंजिलों में प्रतिक्रांतिकारी होता है; यहां मुक्ति संघर्ष के एक कारक के तौर पर राष्ट्रीय कारक अनुपस्थित होता है। औपनिवेशिक और निर्भर देशों में क्रांति दूसरी चीज है: यहां अन्य राष्ट्रों द्वारा साम्राज्यवादी उत्पीड़न क्रांति के कारकों में से एक है; यहां यह उत्पीड़न राष्ट्रीय बुर्जुआ को भी प्रभावित किए बिना नहीं रह सकता; यहां राष्ट्रीय बुर्जुआ कुछ हद तक और कुछ समय साम्राज्यवाद के खिलाफ अपने देश के क्रांतिकारी संघर्ष का समर्थन कर सकता है; यहां मुक्ति के संघर्ष एक कारक के तौर पर, राष्ट्रीय कारक एक क्रांतिकारी कारक है।" (J.V. Stalin, 'About China, Joint Plenum of the CC and Central Control Commission of the CPSU(B)', July 29-August 9, 1927, On Opposition, Foreign Language Press, Peking, 1975, Page-773, अनुवाद हमारा)

चीनी क्रांति की मुख्य चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करते हुए स्टालिन कहते हैं:

"पहली चारित्रिक विशेषता यह है कि, हालांकि चीनी क्रांति बुर्जुआ जनवादी क्रांति है, साथ ही यह चीन में विदेशी साम्राज्यवाद के खिलाफ लक्षित एक राष्ट्रीय मुक्ति की क्रांति भी है।...

"चीनी क्रांति की दूसरी चारित्रिक विशेषता यह है कि चीन में बड़ा राष्ट्रीय बुर्जुआ अतीव कमजोर है।... इसका मतलब यह है कि चीनी क्रांति को शुरू करने

वाले और उसके दिशा निर्देशक की भूमिका, चीनी किसान वर्ग के नेता की भूमिका, अनिवार्य रूप से चीनी सर्वहारा और उसकी पार्टी के पास आ जाती है।

"...चीनी क्रांति की तीसरी विशेषता यह है कि ...चीन के साथ-साथ सोवियत संघ विद्यमान है और विकसित हो रहा है और इसका क्रांतिकारी अनुभव तथा इसकी सहायता चीनी सर्वहारा के साम्राज्यवाद तथा चीन में मध्ययुगीन सामंतवादी अवशेषों के खिलाफ मदद करेगी।" (J.V. Stalin, 'The Prospects of Revolution in China, On the Opposition', वही, पृष्ठ-500-5001, अनुवाद हमारा)

आगे,

"और ठीक इसी कारण कि अपने संपूर्ण सैन्यवादी नौकरशाही अधिरचना के साथ सामंती अवशेष चीन में उत्पीड़न का प्रधान रूप है, चीन इस समय बहुत व्यापक और शक्तिशाली कृषि क्रांति से गुजर रहा है।

"और कृषि क्रांति क्या है? निश्चय ही, यह बुर्जुआ जनवादी क्रांति का आधार और सारतत्व है।

"ठीक इसी कारण कौमिन्टर्न कहता है कि चीन इस समय बुर्जुआ जनवादी क्रांति से गुजर रहा है।

"लेकिन चीन की बुर्जुआ जनवादी क्रांति केवल सामंती अवशेषों के खिलाफ उन्मुख नहीं है, यह साम्राज्यवाद के खिलाफ भी उन्मुख है। क्यों?

"क्योंकि साम्राज्यवाद वह ताकत है जो अपनी सारी वित्तीय और सैनिक ताकत के साथ सामंती अवशेषों और साथ ही उनके सारे सैनिक-नौकरशाही अधिरचना को आधार प्रदान करता है अनुप्राणित करता है, पालता-पोषता है तथा बनाए रखता है।

"क्योंकि चीन में साम्राज्यवाद के खिलाफ क्रांतिकारी संघर्ष चलाए बिना, चीन में सामंती अवशेषों को उखाड़ फेंकना असंभव है।

"क्योंकि जो कोई भी सामंती अवशेषों को समाप्त करना चाहता है, उसे चीन में साम्राज्यवाद और साम्राज्यवादी समूहों के खिलाफ अपने हाथ उठाने होंगे।

"क्योंकि साम्राज्यवाद के खिलाफ दृढ़ संघर्ष चलाए बिना चीन में सामंती अवशेषों को ध्वस्त और खत्म नहीं किया जा सकता।

"ठीक इसी कारण कौमिन्टर्न कहता है कि चीन की बुर्जुआ जनवादी क्रांति साथ ही साम्राज्यवाद विरोध क्रांति भी है।

"इस प्रकार चीन की वर्तमान क्रांति दो क्रांतिकारी आंदोलनों की धारा का समन्वय है- सामंती अवशेषों के खिलाफ आंदोलन तथा साम्राज्यवाद के खिलाफ आंदोलन। चीन की बुर्जुआ जनवादी क्रांति सामंती अवशेषों के खिलाफ संघर्ष तथा साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष का समन्वय है।" (J.V.Stalin, 'The Revolution in China and Tasks of Comintern, On Opposition', वही, पृष्ठ-700-701, अनुवाद हमारा)

यहां चीनी क्रांति (और प्रकारान्तर से सभी उपनिवेशों और अर्ध-उपनिवेशों) की क्रांति के दोनों मुख्य कार्यभारों-सामंतवाद का खात्मा वह साम्राज्यवाद का खात्मा - के संबंध को बहुत अच्छी तरह व्यक्त किया गया है। इससे इन दोनों कार्यभारों का अंतर्गुफन उभर कर सामने आता है जो बताता है कि एक के बिना दूसरे कार्यभार को अंजाम नहीं दिया जा सकता। इसी में स्टालिन चीन की शक्तिशाली सैन्यवादी-नौकरशाही अधिरचना की प्रतिक्रियावादी भूमिका को भी रेखांकित करते हैं।

इससे पहले तक बुर्जुआ जनवादी क्रांति में क्रांति के रास्ते का सवाल उठाया नहीं जाता था। पुरानी बुर्जुआ क्रांतियों के अनुभव को देखते हुए यह मान लिया जाता था कि

क्रांति में शहरों और गांवों की जनता विद्रोह में उठ खड़ी होगी (शायद शहरों में पहले) तथा सत्ता नये वर्ग या नये वर्गों के हाथ में आ जाएगी। यह बात मार्क्स - एंगेल्स के जमाने में सोची गई थी जब बुर्जुआ जनवादी क्रांति का नेतृत्व बुर्जुआ या पेटी बुर्जुआ को करना था तथा लेनिन के जमाने में भी जब बुर्जुआ जनवादी क्रांति का नेतृत्व सर्वहारा को करना था। रूस में 1905 व 1917 की क्रांतियों में हुआ भी ऐसा ही। यहां पहले शहरों में मजदूर और फिर गांवों में किसान विद्रोह में उठ खड़े हुए तथा जारशाही ढह गई। लेकिन 1925 से ही चीनी क्रांति ने एक भिन्न रास्ता पकड़ना शुरू किया। इस रास्ते की रूपरेखा अभी बहुत साफ नहीं थी लेकिन इसकी मूल विशेषता को पकड़ते हुए स्टालिन ने लिखा :

"चीन में सशस्त्र क्रांति सशस्त्र प्रतिक्रांति से लड़ रही है। यह चीनी क्रांति की चारित्रिक विशेषताओं में से एक है तथा चीनी क्रांति की लाभदायक स्थितियों में से एक है।" (वही, पृष्ठ-505, अनुवाद हमारा)

यहां स्टालिन जिस विशेषता का जिक्र कर रहे हैं वह यह है कि चीन में बिलकुल शुरू में ही क्रांति ने एक स्थाई सेना गठित कर ली और यह प्रतिक्रांति की सेना से लड़ने लगी। पहले की बुर्जुआ क्रांतियों में ऐसा नहीं हुआ था। यहां विद्रोह परिवर्तन के बाद गृहयुद्ध के रूप में सशस्त्र संघर्ष होता था । जाहिर सी बात है कि विद्रोह से पहले तैयारी का एक लम्बा समय गुजरता था।

चीन में बुर्जुआ जनवादी क्रांति क्या रूप ग्रहण करेगी और समाजवादी क्रांति से उसका संबंध क्या होगा, इसे निरूपित करने के लिए स्टालिन ने रूसी क्रांति के अनुभव का सहारा लिया। उन्होंने सोचा कि चीनी क्रांति मोटा-मोटी रूसी क्रांति का ही अनुसरण करेगी।

"मेरा विचार है कि चीन की भावी क्रांतिकारी सरकार आम तौर पर कुछ उसी तरह की की होगी जैसी हम अपने देश में 1905 में बात किया करते थे, यानि कि, सर्वहारा और किसानों के जनवादी अधिनायकत्व जैसी कोई चीज, लेकिन इस फर्क के साथ कि वह सबसे पहले और सबसे बढ़कर एक साम्राज्यवाद विरोधी सरकार होगी।

"यह चीन के गैर पूंजीवादी, या ज्यादा सही कहें तो, समाजवादी विकास की ओर उन्मुख संक्रमणकालीन सरकार होगी।" (वही, पृष्ठ-507-508, अनुवाद हमारा)

"इसे पहले से ही माना जाना चहिए कि क्रांति की दूसरी मंजिल [यानि बुर्जुआ जनवादी क्रांति की मंजिल–लाल सलाम] भी साम्राज्यवादियों को निकाल बाहर करने के कार्यभार को पूरा करने में सफल नहीं हो पायेगी। यह चीनी मजदूरों और किसानों के व्यापक जनसमुदाय को साम्राज्यवाद के खिलाफ खड़ा होने के लिए और अधिक झकझोरेगी, लेकिन यह इसलिए करेगी कि वह इस कार्यभार को पूरा करने का काम चीनी क्रांति की अगली मंजिल, सोवियत मंजिल [यानि समाजवादी क्रांति–लाल सलाम] को सौंप दे।

"इसमें कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। क्या हम यह नहीं जानते कि इससे मिलती-जुलती चीजें हमारी क्रांति के इतिहास में हुईं, हालांकि एक भिन्न स्थिति व परिस्थिति में। क्या हम यह नहीं जानते कि हमारी क्रांति की पहली मंजिल ने कृषि क्रांति को पूरा करने के कार्यभार को अंजाम नहीं दिया तथा उसने इस कार्यभार को क्रांति की अगली मंजिल को सौंप दिया, अक्टूबर क्रांति को, जिसने सामंती अवशेषों को समाप्त करने के कार्यभार को सर्वोत्तमुखी और पूर्णतया अंजाम दिया। इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं होगा, यदि चीनी क्रांति की दूसरी मंजिल कृषि क्रांति को पूरा करने में असफल रह जाती है, तथा क्रांति की दूसरी मंजिल, किसानों के जन समुदाय को

झकझोर तथा उन्हें सामंती अवशेषों के खिलाफ खड़ा कर देने के बाद, इस कार्यभार को पूरा करने के काम को क्रांति की अगली मंजिल को सौंप देती है-सोवियत मंजिल को। यह चीन की भावी सोवियत क्रांति की अच्छाई ही होगी।" (वही, पृष्ठ-787-788, अनुवाद हमारा)

यहां स्टालिन चीनी क्रांति की एक संभावना की बात कर रहे हैं कि हो सकता है वह वही रूप ग्रहण करे जो रूसी क्रांति ने किया था। यह संभावना उस समय व्यक्त की गई जब वामपंथी समझे जाने वाले क्वोमिंतांग ने भी 1927 में क्रांति से गद्दारी कर दी थी और कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व वाले आंदोलन को भारी धक्का लगा था। लेकिन हम जानते हैं कि चीनी क्रांति ने एक बिलकुल ही अलग रूप और रास्ता ग्रहण किया जो इसी धक्के से पैदा हुआ।

V

बुर्जुआ जनवादी क्रांति तथा सर्वहारा समाजवादी क्रांति के अंतर्सम्बन्ध पर माओ

अर्ध-औपनिवेशिक व अर्ध - सामंती चीन रूस से बहुत पिछड़ा हुआ देश था। यहां जो बुर्जुआ जनवादी क्रांति माओ के नेतृत्व में सम्पन्न हुई वह अपने कार्यभार और रणनीति में तो मूलतः वैसी ही थी जैसे कौमिन्टर्न और स्टालिन कह रहे थे पर अपने क्रांति के रास्ते और रूप में यह उससे काफी कुछ अलग रही। जहां क्रांति के विकास का रास्ता स्टालिन व कौमिन्टर्न मोटा-मोटी रूस की तरह देख रहे थे वहीं वस्तुतः चीनी क्रांति एक भिन्न रास्ते से गुजरी। इसे माओ ने क्रांति के दौरान नव जनवादी क्रांति के रूप में शानदार ढंग से सूत्रित किया। आइये देखें, कैसे?

क्रांति के चरित्र, कार्यभार और वर्गों की लामबंदी की बात करते हुए माओ कहते हैं:

"जब इस मंजिल में क्रांति के मुख्य दुश्मन साम्राज्यवाद और सामंती जमींदार वर्ग है, तो क्रांति के वर्तमान कार्य क्या हैं?

"निस्संदेह उसके मुख्य कार्य हैं इन दोनों दुश्मनों पर प्रहार करना, यानि साम्राज्यवादी उत्पीड़न को समाप्त करने के लिए राष्ट्रीय क्रांति करना और सामंती जमींदारों का तख्ता उलट देने के लिए जनवादी क्रांति करना; उसका सर्वप्रमुख कार्य है साम्राज्यवाद का तख्ता उलट देने के लिए राष्ट्रीय क्रांति करना।

"चीनी क्रांति के ये दोनों बड़े कार्य एक दूसरे से संबंधित हैं। जब तक साम्राज्यवादी शासन का तख्ता उलट नहीं दिया जाता, तब तक सामंती जमींदार वर्ग का शासन भी खत्म नहीं किया जा सकता, क्योंकि साम्राज्यवाद सामंती जमींदार वर्ग का मुख्य समर्थक है। इसके विपरीत, जब तक सामंती जमींदार वर्ग का तख्ता उलट देने के लिए किसानों को मदद नहीं दी जाती, तब तक साम्राज्यवादी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए शक्तिशाली क्रांतिकारी दस्तों का निर्माण संभव नहीं, क्योंकि चीन में साम्राज्यवादी शासन का मुख्य सामाजिक आधार सामंती वर्ग है और चीनी क्रांति की मुख्य शक्ति किसान है। इसलिए राष्ट्रीय क्रांति और जनवादी क्रांति ये दोनों बुनियादी कार्य अलग-अलग होते हुए भी आपस में जुड़े हुए हैं।" (माओ त्से तुंग, 'चीनी क्रांति और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी', संकलित रचनाएं, विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, पीकिंग, 1973, ग्रंथ-2, पृष्ठ-560-561)

"वर्तमान मंजिल में चीनी क्रांति का स्वरूप आखिर क्या है? यह पूंजीवादी-जनवादी क्रांति है अथवा सर्वहारा समाजवादी क्रांति? जाहिर है, यह दूसरी नहीं

बल्कि पहली किस्म की क्रांति है।

"चूंकि चीनी समाज एक औपनिवेशिक, अर्ध-औपनिवेशिक और अर्ध-सामंती समाज है, चूंकि चीनी क्रांति के मुख्य दुश्मन साम्राज्यवाद और सामंतवाद है, चूंकि क्रांति का मुख्य कार्य इन दोनों मुख्य दुश्मनों का तख्ता उलट देने के लिए राष्ट्रीय व जनवादी क्रांति करना है, जिसमें कभी-कभी पूंजीपति वर्ग भी शामिल होता है, तथा चूंकि बड़े पूंजीपतियों के वर्ग द्वारा क्रांति के साथ गद्दारी किये जाने पर और उसका शत्रु बन जाने पर भी, क्रांति के प्रहार का निशाना साम्राज्यवाद और सामंतवाद को ही बनाया जाता है और सामान्य पूंजीवाद और पूंजीवादी निजी सम्पत्ति को नहीं बनाया जाता-चूंकि यह सब सच है, इसलिए वर्तमान मंजिल में चीनी क्रांति का स्वरूप सर्वहारा समाजवादी नहीं बल्कि पूंजीवादी जनवादी है।

"लेकिन आज के चीन में पूंजीवादी जनवादी क्रांति पुरानी आम किस्म की पूंजीवादी - जनवादी क्रांति नहीं है, जो अब पुरानी पड़ चुकी है, बल्कि नयी खास किस्म की पूंजीवादी-जनवादी क्रांति है। हम इसे नव-जनवादी क्रांति कहते हैं और यह क्रांति चीन में तथा दूसरे तमाम औपनिवेशिक और अर्ध-औपनिवेशिक देशों में विकसित हो रही है। यह नव-जनवादी क्रांति दुनिया की सर्वहारा समाजवादी क्रांति का एक अंग है, क्योंकि यह साम्राज्यवाद अर्थात् - अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद का डटकर विरोध करती है। राजनीतिक तौर पर यह साम्राज्यवादियों, देशद्रोहियों और प्रतिक्रियावादियों पर क्रांतिकारी वर्गों का संयुक्त अधिनायकत्व कायम कर लेती है तथा चीनी समाज का पूंजीपति वर्ग के अधिनायकत्व वाले समाज में परिवर्तन का विरोध करती है।...

"इस प्रकार की नव-जनवादी क्रांति अतीत काल की यूरोप और अमरीका की जनवादी क्रांतियों से बिलकुल अलग किस्म की है, क्योंकि इसके परिणाम स्वरूप पूंजीपति वर्ग का अधिनायकत्व कायम करने के बजाय सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में तमाम क्रांतिकारी वर्गों के संयुक्त मोर्चे का अधिनायकत्व कायम किया जाता है।..." (वही, पृष्ठ-575-577)

यह नव जनवाद कौन सा रूप ग्रहण करेगा? इस मामले में चीनी क्रांति अलग-अलग समयों में अलग-अलग रूपों से गुजरी। 1927-37 के दौर में जब न केवल दलाल बल्कि राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग भी क्रांति के खिलाफ चला गया था, तब इसने मजदूरों और किसानों के जनवादी अधिनायकत्व का रूप-धारण किया। इस संबंध में माओ ने लिखा:

"क्या मजदूर-किसानों के जनवादी गणराज्य का नारा गलत था ? नहीं, वह गलत नहीं था। चूंकि पूंजीपति वर्ग, विशेषकर बड़े पूंजीपतियों का वर्ग, क्रांति से हट गया था, साम्राज्यवाद और सामंती ताकतों के पक्ष में चला गया था और जनता का शत्रु बन गया था, इसलिए क्रांति की बची हुई प्रेरक शक्तियों में केवल सर्वहारा वर्ग, किसान और शहरी निम्न पूंजीपति ही रह गये थे; एकमात्र क्रांतिकारी पार्टी केवल कम्युनिस्ट पार्टी रह गयी थी तथा क्रांति के संगठन करने की जिम्मेदारी कम्युनिस्ट पार्टी के कंधों पर, जो एकमात्र क्रांतिकारी पार्टी थी, पड़े बिना नहीं रही। अकेली कम्युनिस्ट पार्टी ने ही क्रांति का झंडा ऊंचा उठाए रखा, क्रांतिकारी परंपरा की रक्षा की, मजदूर-किसानों के जनवादी गणराज्य का नारा प्रस्तुत किया और अनेक वर्षों तक इस नारे के लिए कठोर संघर्ष किया। मजदूर - किसानों के जनवादी गणराज्य का नारा पूंजीवादी-जनवादी क्रांति के कार्य के विरुद्ध नहीं था, बल्कि उसका लक्ष्य था उस क्रांति के कार्य को दृढ़ता से पूरा करना।...(माओ, 'जापान-आक्रमण विरोध-काल में चीनी

कम्युनिस्ट पार्टी के कार्य', वही ग्रन्थ-1, पृष्ठ-485)

जब 1936-37 के काल में जापान के आक्रमण के विरोध में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा व्यापक संयुक्त मोर्चा बनाने का प्रयास किया गया तो मजदूरों-किसानों के जनवादी गणराज्य के नारे को छोड़ दिया गया क्योंकि अब क्रांति में राष्ट्रीय पूंजीपतियों और कुछ बड़े पूंजीपतियों के भी अस्थाई तौर शामिल होने की संभावना पैदा हो गयी थी। ऐसे में पहले लोक गणराज्य का नारा दिया गया जिसे फिर जनवादी गणराज्य में बदल दिया गया क्योंकि कुछ लोगों के लोक गणराज्य से भी बिदकने की आशंका थी। यह नारा द्वितीय विश्व युद्ध तक, जापान की पराजय तक लागू रहा जिसे उसके बाद फिर लोक जनवादी गणराज्य घोषित कर दिया गया। जापान विरोधी मोर्चे के दौरान व्यापकतम मोर्चा बनाए रखने के लिए पार्टी ने हाल-फिलहाल सामंती जमीन के पुनर्वितरण को भी स्थगित कर दिया था।

जहां तक इस क्रांति के भविष्य का सवाल था, साफ था कि इसका उद्देश्य लम्बे अंतराल के बाद समाजवाद लागू करना था। माओ कहते हैं :

"चूंकि मौजूदा मंजिल में चीन की पूंजीवादी-जनवादी क्रांति पुरानी आम किस्म की पूंजीवादी-जनवादी क्रांति नहीं, बल्कि एक नयी खास किस्म की जनवादी क्रांति है, एक नव-जनवादी क्रांति है- और चूंकि यह बीसवीं शताब्दी के चौथे और पांचवें दशकों के एक ऐसे नये अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में हो रही है जिसकी विशेषता है समाजवाद का उदय और पूंजीवाद का पतन, चूंकि यह दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान और क्रांति के युग में ही हो रही है, इसलिए इस बात में तनिक भी संदेह नहीं कि चीनी क्रांति का भविष्य आखिरकार पूंजीवाद नहीं बल्कि समाजवाद और कम्युनिज्म है।" (माओ, 'चीनी क्रांति और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी', वही, पृष्ठ-581)

चीनी जनवादी क्रांति का भविष्य समाजवाद और कम्युनिज्म तो था परन्तु इसे तुरत-फुरत नहीं लागू किया जा सकता था :

"निस्संदेह मौजूदा क्रांति पहला कदम है, जो आगे चलकर दूसरे कदम यानि समाजवाद के कदम में विकसित हो जाएगा और चीन में सच्चा सुख-चैन सिर्फ तभी प्राप्त किया जा सकेगा। जब वह समाजवादी युग में प्रवेश करेगा। लेकिन आज समाजवाद को लागू करने का काल नहीं है। चीन में क्रांति का मौजूदा कार्य साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद से लड़ना है और जब तक यह कार्य पूरा नहीं हो जाता, तब तक समाजवाद का प्रश्न नहीं उठता। चीनी क्रांति को अनिवार्य रूप से दो कदम उठाने हैं, पहला नव जनवाद का और फिर समाजवाद का। इसके अलावा, पहले कदम के लिए काफी लम्बे समय की आवश्यकता होगी उसे रातों रात पूरा नहीं किया जा सकता। हम लोग शेखचिल्ली नहीं हैं और अपने सामने मौजूदा वास्तविक स्थितियों से अपने को अलग नहीं कर सकते।" (माओ, 'नव-जनवाद के बारे में', वही, ग्रन्थ-2, पृष्ठ-636-637)

"...चीन की वर्तमान मंजिल के लिए जो व्यवस्था निर्धारित की जा रही है, वह चीन के इतिहास की वर्तमान मंजिल की उपज होगी, तथा भविष्य में काफी लम्बे समय तक राज्य और राजनीतिक सत्ता के एक विशेष रूप का अस्तित्व बना रहेगा, एक ऐसे रूप का जो रूसी व्यवस्था से भिन्न है किन्तु हमारे लिए बिलकुल आवश्यक और युक्तियुक्त है, यानि जनवादी क्रांति के संश्रय पर आधारित नवजनवादी राज्य और राजनीतिक सत्ता का रूप।" (माओ, 'मिली-जुली सरकार के बारे में', वही ग्रन्थ-3, पृष्ठ-423)

"...चीन के आर्थिक पिछड़ेपन के कारण, क्रांति की देशव्यापी विजय के

> बाद भी यह आवश्यक होगा कि अर्थव्यवस्था के पूंजीवादी तत्व के, जिसका प्रतिनिधित्व व्यापक निम्न पूंजीपति वर्ग की उच्च श्रेणी तथा मध्यम पूंजीपति करते हैं, अस्तित्व को काफी लम्बे समय तक बने रहने दिया जाए..." (माओ, 'वर्तमान परिस्थिति और हमारे कार्य', वही, ग्रन्थ-4, पृष्ठ-276)

बुर्जुआ जनवादी क्रांति (नव-जनवादी क्रांति) से समाजवादी क्रांति में रूपान्तरण में यहां जो चीज मुखर है वह है लम्बा अंतराल। यहां यह बार-बार रेखांकित होता है कि चीन के पिछड़े होने के कारण नव-जनवादी क्रांति के विजयी हो जाने के बाद भी समाजवाद में तुरंत संक्रमण नहीं किया जा सकेगा। यह बात रूसी क्रांति से साफ तौर पर भिन्न है जिसमें तुरंत बाद संक्रमण की, बिना रूके हुए संक्रमण की बात की गयी थी । यह बात रूसी क्रांति के अक्टूबर के अनुभव और उस पर आधारित स्टालिन के आकलन से भी भिन्न थी कि हो सकता है कि चीन में बुर्जुआ जनवादी क्रांति के कार्यभार समाजवादी क्रांति ही पूरा करे। चीन में ऐसा नहीं हुआ। बल्कि चीन में दोनों क्रांतियां अपनी निष्पत्ति में बिलकुल साफ दो चरणों के रूप में उभरीं । पहले नव-जनवादी क्रांति जिसमें बुर्जुआ जनवादी क्रांति के कार्य पूरे करने हैं, फिर उसका सुदृढ़ीकरण तथा समाजवाद की ओर प्रस्थान । निश्चय ही यहां कोई चीन की दीवार दोनों को अलग नहीं कर रही थी फिर भी दोनों चरण बिलकुल स्पष्ट तौर पर अलग थे जैसे दिन और रात अलग रहते हैं। इसी के अनुरूप क्रांति सफल होने के बाद सामूहिकीकरण और राष्ट्रीयकरण (समाजवादी कदम) के लिए 15 साल की बात सोची गई हालांकि व्यवहारतः यह जल्दी पूरा हो गया ।

चीन मे इन दोनों क्रांतियों के स्पष्ट विभाजन का कारण चीन का पिछड़ापन था। एक नियम के तौर पर जनवादी क्रांति जितने अधिक पिछड़े देश में होगी, जनवादी क्रांति और समाजवादी क्रांति के बीच समयांतराल उतना ही ज्यादा होगा । अपेक्षाकृत विकसित देश में जनवादी क्रांति तुरंत ही समाजवादी क्रांति में प्रवेश कर जायगी, जैसा कि रूस में हुआ था।

नव जनवादी क्रांति में संक्रमण की बात करते वक्त यहां उसके रूप और रास्ते के बारे में कुछ नहीं कहा गया है। हम जानते हैं कि रूस में इस संक्रमण ने एक क्रांति का रूप लिया था और पहले स्टालिन भी कुछ इसी रूप में सोच रहे थे, जैसा कि पहले कहा गया है। पर चीन में इस बारे में कुछ न कहने की वजह एक बहुत ही स्वाभाविक सी चीज थीः वह थी चीनी क्रांति पर सर्वहारा का प्रभुत्व व नेतृत्व। पहले यह सिद्धान्त माना गया, फिर यह व्यवहारतः साबित हुआ कि केवल सर्वहारा ही सच्ची क्रांति का नेतृत्व कर सकता है। अब यदि सर्वहारा क्रांति के नेतृत्व पर काबिज है और बाकी वर्गों पर उसका प्रभुत्व कायम है तो जाहिर सी बात है कि नव-जुनवादी सत्ता में वही प्रधान होगा। ऐसे में नव-जनवाद से समाजवाद में प्रवेश करने के लिए किसी वर्ग को राज्य सत्ता से उखाड़ फेंकने की आवश्यकता नहीं होगी। इसलिए किसी नयी क्रांति की आवश्यकता नहीं होगी। हां, सर्वहारा के नेतृत्व वाला राज्य (जिसमें बाकी वर्ग भी शामिल होंगे।) जैसे ही समाजवाद की ओर बढ़ेगा, पूंजीपति वर्ग का प्रतिरोध लाजिमी होगा। उसे कुचलना आवश्यक होगा। लेकिन चीन के जैसे कमजोर पूंजीपति वर्ग को कुचलना चीन के मजदूर-किसान राज्य के लिए जरा भी मुश्किल बात नहीं होती। इसलिए चीन में यह संक्रमण एक नयी राज्य क्रांति के बदले राजकीय कदमों का स्वरूप ज्यादा ग्रहण करता। व्यवहारतः हुआ भी यही।

चीनी क्रांति के राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के बारे में भी यहां कुछ बात कर लेना आवश्यक है जिसका व्यवहार न केवल रूसी बुर्जुआ से भिन्न था बल्कि उससे भी भिन्न था जैसा कि कौमिन्टर्न या स्टालिन सोच रहे थे। चीन का पूंजीपति वर्ग दो हिस्सों में विभाजित था-दलाल (बड़ पूंजीपति वर्ग) और राष्ट्रीय (मध्यम व छोटा पूंजीपति वर्ग)। राष्ट्रीय पूंजीपति

के भी दो हिस्से थे और इसके एक हिस्से के कुछ समय तक और कुछ हद तक क्रांति में आने की संभावना बनती थी।

> "...चीन एक औपनिवेशिक और अर्ध-औपनिवेशिक देश है और वह दूसरों के आक्रमण का शिकार है, इसलिए उसके राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग में कुछ खास अवधियों में और एक खास हद तक क्रांतिकारी गुण मौजूद रहता है।...
>
> "लेकिन, इसके साथ ही एक औपनिवेशिक और अर्ध-औपनिवेशिक देश का पूंजीपति होने के कारण और इसलिए आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से अत्यधिक कमजोर होने के कारण, चीन के राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की एक और खासियत है, अर्थात् क्रांति के शत्रुओं के साथ सुलह - समझौते करने की प्रवृत्ति । क्रांति में भाग लेते समय भी वह साम्राज्यवाद के साथ पूरी तरह संबंध विच्छेद करने को अनिच्छुक रहता है, इसके अलावा देहाती क्षेत्रों में लगान के जरिए किये जाने वाले शोषण के साथ उसका निकट का संबंध है, इस प्रकार वह न तो साम्राज्यवाद को पूरी तरह से उखाड़ फेंकने को इच्छुक है और न उसमें समर्थ ही, सामंती शक्तियों को पूरी तरह से उखाड़ फेंकना तो दरकिनार । अतएव चीन की पूंजीवादी - जनवादी क्रांति की दोनों बुनियादी समस्याओं अथवा दोनों कार्यों में से किसी एक को भी राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग द्वारा हल नहीं किया जा सकता।...
>
> "एक ओर क्रांति में शामिल होने की संभावना और दूसरी ओर क्रांति के शत्रुओं के साथ सुलह-समझौता करने की प्रवृत्ति - ऐसा ही है चीन के पूंजीपति वर्ग का दुरंगा चरित्र, और वह दोनों की ओर रूख किये रहता है। यूरोपीय तथा अमरीकी इतिहास में भी पूंजीपति वर्ग इस दुरंगे चरित्र का भागीदार रहा है। एक प्रबल शत्रु का सामना होने पर, वह शत्रु के विरूद्ध मजदूरों और किसानों के साथ एकता कायम कर लेता था, लेकिन जब मजदूर व किसान जागृत हो जाते थे, तो वह पलटकर मजदूरों और किसानों के विरूद्ध शत्रु के साथ एकता कायम कर लेता था। यह पूंजीपति वर्ग पर दुनिया में सर्वत्र लागू होने वाला एक आम नियम है, लेकिन चीन के पूंजीपति वर्ग में यह लक्षण अधिक प्रबल रूप में मौजूद है।" (माओ, 'नव-जनवाद के बारे में', वही, ग्रन्थ-2, पृष्ठ-618-620)
>
> "पूंजीपति वर्ग में बड़े दलाल-पूंजीपतियों के वर्ग और राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग में फर्क है।
>
> "बड़े दलाल पूंजीपतियों का वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो सीधा साम्राज्यवादी देशों के पूंजीपतियों की सेवा करता है और उन्हीं के टुकड़ों पर पलता है, देहातों में सामंती शक्तियों के साथ उसका अत्यंत घनिष्ट संबंध होता है। इसलिए चीनी क्रांति के इतिहास में वह कभी भी क्रांति की प्रेरक शक्ति नहीं रहा, बल्कि क्रांति के प्रहार का लक्ष्य रहा है।...
>
> ''राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग एक दुरंगे चरित्र वाला वर्ग है।...
>
> "राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के इस दुरंगे चरित्र से यह नतीजा निकलता है कि किसी निश्चित समय और किसी हद तक यह साम्राज्यवाद के खिलाफ और नौकरशाहों व युद्ध सरदारों की सरकार के खिलाफ क्रांति में भाग ले सकता है और क्रांतिकारी शक्तियों का एक हिस्सा बन सकता है, लेकिन किसी दूसरे समय इसके बड़े दलाल पूंजीपतियों के वर्ग का अनुचायी बनने और प्रतिक्रांति में उसका सह-अपराधी बनने का खतरा भी रहता है।" (माओ, 'चीनी क्रांति और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी', वही, ग्रन्थ-2,

पृष्ठ 563-565)

लेकिन चीनी क्रांति की रूसी क्रांति की इन छोटी-मोटी भिन्नताओं से अधिक बड़ी भिन्नता क्रांति के रास्ते की भिन्नता थी। चीन की बुर्जुआ जनवादी क्रांति (नवजनवादी क्रांति) रूसी बुर्जुआ जनवादी क्रांति से जहां गुणात्मक रूप में भिन्न है वह चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में दीर्घकालिक क्रांति का रास्ता है, आधार क्षेत्र जिसका महत्वपूर्ण हिस्सा है। चीन के पहले की बुर्जुआ जनवादी क्रांतियां जनता के विद्रोह थी जिसके साथ ही सत्ता परिवर्तन हो जाता था या क्रांति विफल हो जाती थी। रूस में भी 1905 व फरवरी 1917 में यही हुआ था। इसीलिए सभी लोग यही मान रहे थे कि चीनी क्रांति भी इसी रास्ते पर चलेगी। लेकिन चीनी क्रांति ने बिल्कुल अलग रास्ता ग्रहण किया। केवल इसके व्यवहार ने और माओ द्वारा उसके सैद्धान्तिक निरूपण ने ही यह दिखाया कि चीन उस रास्ते पर नहीं चलेगा जिस पर अभी तक जनवादी क्रांतियां चली थीं।

आइये, इसे कुछ विस्तार से देखें।

"शस्त्र बल द्वारा राज्य सत्ता छीनना, युद्ध द्वारा मसले को सुलझाना, क्रांति का केन्द्रीय कार्य और सर्वोच्च रूप है। क्रांति का यह मार्क्सवादी-लेनिनवादी उसूल सर्वत्र लागू होता है, चीन पर और अन्य सभी देशों पर लागू होता है।

"लेकिन उसूल एक होने पर भी जब सर्वहारा वर्ग की पार्टी उसे अमल में लाती है तो वह अलग-अलग परिस्थितियों के अनुरूप उसकी अभिव्यक्ति के अलग-अलग तरीके अपनाती है। पूंजीवादी देश, जब वे फासिस्टवादी नहीं होते अथवा युद्ध में नहीं उलझे होते तो वे अपने देश के भीतर पूंजीवादी लोकशाही पर (सामंतशाही पर नहीं) अमल करते हैं; अपने विदेशिक संबंधों में वे दूसरे राष्ट्रों के उत्पीड़न का शिकार नहीं होते बल्कि खुद दूसरे राष्ट्रों का उत्पीड़न करते हैं। उनकी इन विशेषताओं के कारण, पूंजीवादी देशों के सर्वहारा का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह दीर्घकालीन कानूनी संघर्ष के जरिए मजदूरों को शिक्षित करे तथा अपनी शक्ति का संचय करें और पूंजीवाद का तख्ता अंतिम रूप से उखाड़ फेंकने के लिए तैयारी करें। उक्त देशों में मसला यह है कि दीर्घकाल तक कानूनी संघर्ष चलाया जाय, पार्लियामेंट को एक मंच के रूप में इस्तेमाल किया जाय और मजदूरों को शिक्षित किया जाए। इन देशों में संगठन का रूप कानूनी होता है और संघर्ष का रूप रक्तपात हीन (गैर फौजी)। युद्ध के मसले के बारे में पूंजीवादी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियां अपने खुद के मुल्कों द्वारा छेड़े गये साम्राज्यवादी युद्ध का विरोध करती है। अगर इस प्रकार के युद्ध हों तो इन कम्युनिस्ट पार्टियों की नीति ऐसी होती है जो अपने देश की प्रतिक्रियावादी सरकारों को पराजित करने में सहायक हो। जो युद्ध वे करना चाहती है, वह गृहयुद्ध होता है जिसकी वे तैयारी कर रही है। लेकिन यह बगावत और युद्ध तब तक नहीं छेड़ना चाहिए जब तक पूंजीपति वर्ग वास्तव में असहाय नहीं हो जाता, जब तक सर्वहारा वर्ग का बहुसंख्यक जन समुदाय विद्रोह करने और युद्ध चलाने के लिए संकल्पबद्ध नहीं हो जाता तथा जब तक किसान समुदाय स्वेच्छा से सर्वहारा वर्ग को मदद नहीं देता। और जब इस प्रकार की बगावत और युद्ध का समय आ जाएगा, तो पहला कदम यह होगा कि शहरों पर कब्जा कर लिया जाए, और फिर देहातों की तरफ बढ़ा जाए न कि इसके विपरीत कदम उठाया जाए। पूंजीवादी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों ने ऐसा ही किया है, तथा रूस की अक्टूबर क्रांति ने इस बात को सही साबित किया है।

"लेकिन चीन एक भिन्न प्रकार का देश है। चीन की विशेषता यह है कि

वह एक स्वाधीन जनवादी देश नहीं, बल्कि अर्ध-औपनिवेशिक और अर्ध - सामंती देश है, अंदरूनी तौर पर चीन में लोक शाही का अभाव है और वह सामंती उत्पीड़न का शिकार है, तथा उसके वैदेशिक सम्बन्धों में राष्ट्रीय स्वतंत्रता का अभाव है और साम्राज्यवादी उत्पीड़न का शिकार है। इस प्रकार यहां न तो इस्तेमाल करने के लिए कोई पार्लियामेन्ट है और न मजदूरों को हड़ताल के लिए संगठित करने का कोई कानूनी अधिकार ही। बुनियादी तौर पर यहां कम्युनिस्ट पार्टी के सामने न तो यह कार्य है कि वह बगावत अथवा युद्ध शुरू करने से पहले एक लम्बे अरसे तक कानूनी संघर्ष के दौर से गुजरे, और न यह कि पहले शहरों पर कब्जा कर लिया जाए और फिर देहातों पर अधिकार कर लिया जाए। उसके सामने जो कार्य है वह इसके एकदम उलटा है।...

"इन सब बातों से चीन और पूंजीवादी देशों के बीच का फर्क जाहिर हो जाता है। चीन में संघर्ष का मुख्य रूप युद्ध है और संगठन का मुख्य रूप फौज है।..." (माओ, 'युद्ध और रणनीति की समस्याएं', वही, ग्रन्थ-2, पृष्ठ-385-388)

चीन के इस फर्क के कारण चीन ने दीर्घकालिक युद्ध, आधार क्षेत्र और देहातों से शहरों को घेरने की नीति पैदा हुई।

"तब बात साफ है कि चीनी क्रांति के दुश्मन बहुत ताकतवर हैं। उसमें न केवल शक्तिशाली साम्राज्यवादी शामिल हैं बल्कि शक्तिशाली सामंती शक्तियां भी शामिल हैं, और किसी निश्चित समय में पूंजीपति वर्ग के प्रतिक्रियावादी जो जनता का विरोध करने के लिए साम्राज्यवादियों और सामंती शक्तियों के साथ सांठ-गांठ करते हैं भी, शामिल हो जाते हैं।...

"ऐसे दुश्मनों के रहते, चीनी क्रांति एक दीर्घकालीन और निर्मम क्रांति ही हो सकती है। ऐसे शक्तिशाली दुश्मनों के रहते, लम्बे समय तक कम लिए बिना क्रांतिकारी शक्तियों का संचय नहीं किया जा सकता और उन्हें एक ऐसी फौलादी ताकत में नहीं बदला जा सकता जो दुश्मन को अंतिम रूप से शिकस्त देने की सामर्थ्य रखती हो।...

"ऐसे दुश्मनों के रहते, चीनी क्रांति का मुख्य तरीका अथवा मुख्य रूप सशस्त्र संघर्ष ही होना चाहिए, शांतिपूर्ण संघर्ष नहीं। कारण यह कि हमारे दुश्मनों ने चीनी जनता की शांतिपूर्ण गतिविधियों को असंभव बना दिया है और चीनी जनता को तमाम राजनीतिक आजादी से वंचित कर दिया है।...

"ऐसे दुश्मनों के रहते क्रांतिकारी आधार क्षेत्रों का सवाल पैदा हो जाता है। चूंकि चीन के महत्वपूर्ण शहरों पर शक्तिशाली साम्राज्यवादियों और उनके प्रतिक्रियावादी चीनी संश्रयकारियों का लम्बे समय से कब्जा रहा है, इसीलिए क्रांतिकारी पार्टी के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे पिछड़े हुए गांवों को अपने उन्नत और मजबूत आधार क्षेत्रों में बदल दें तथा उन्हें क्रांति के विशाल सैनिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक गढ़ बना दें, जिससे वे अपने खूंखार दुश्मनों के खिलाफ, जो शहरों को देहाती इलाकों पर हमला करने के लिए इस्तेमाल करते हैं, लड़ सकें तथा इस प्रकार वे दीर्घकालीन लड़ाई के जरिए अपनी क्रांति में कदम-ब-कदम पूर्ण विजय प्राप्त कर सकें।... ऐसी स्थिति में चीनी क्रांति के लिए पहले देहाती क्षेत्रों में विजय प्राप्त करना सम्भव है क्योंकि चीन का आर्थिक विकास असंतुलित ढंग से हुआ है (उसकी अर्थव्यवस्था एकीकृत पूंजीवादी अर्थव्यवस्था नहीं है), क्योंकि उसकी भूमि विशाल है (जिससे क्रांतिकारी शक्तियों के लिए स्थान बदलने की गुंजाइश बनी रहती है), क्योंकि प्रतिक्रियावादी खेमे में फूट और अंतरविरोधों का बोलबाला है और क्योंकि किसानों के, जो क्रांति की मुख्य शक्ति है, संघर्ष का नेतृत्व कम्युनिस्ट पार्टी - सर्वहारा वर्ग की पार्टी - कर रही है; लेकिन दूसरी तरफ ठीक ये ही परिस्थितियां क्रांति को

असंतुलित और उसकी विजय प्राप्त करने के कार्य को लम्बा और कठिन बना देती है। इस प्रकार यह बात साफ हो जाती है कि ऐसे क्रांतिकारी आधार क्षेत्रों में दीर्घकालीन क्रांतिकारी संघर्ष का रूप मुख्यतया किसान छापामार युद्ध है, जिसे चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में चलाया जा रहा है।..." (माओ, 'चीनी क्रांति और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी', वही, ग्रन्थ-2, पृष्ठ 556-558)

सशस्त्र संघर्ष और दीर्घकालीन युद्ध के साथ आधारक्षेत्रों की स्थापना चीन में एक ऐसी चीज थी जो न तो पहले की किसी क्रांति में हुई थी और न ही उस समय किसी और देश में ऐसा हो रहा था। चीन में इसके क्या कारण थे। माओ बताते हैं:

"किसी देश में श्वेत राजनीतिक सत्ता के पूर्ण घेरे के बीच लाल राजनीतिक सत्ता के अधीन एक या कई छोटे-छोटे इलाके बहुत दिनों तक कायम रहना, एक ऐसी घटना है जो दुनिया के किसी और देश में कभी नहीं घटी। इस असाधारण घटना में विशेष कारण है। केवल कुछ खास परिस्थितियों में ही इस तरह की सत्ता कायम रह सकती है और उसका विकास हो सकता है।

"पहले तो किसी साम्राज्यवादी देश में या प्रत्यक्ष साम्राज्यवादी शासन के अधीन किसी उपनिवेश में यह घटना नहीं घट सकती। केवल यह चीन में ही, जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है तथा अर्ध-औपनिवेशिक है और अप्रत्यक्ष साम्राज्यवादी शासन के अधीन है, यह घटना घट सकती है। कारण, यह असाधारण घटना एक दूसरी असाधारण घटना होने पर ही घट सकती है। वह दूसरी असाधारण घटना है श्वेत शासन व्यवस्था के अंतर्गत होने वाला युद्ध। अर्ध औपनिवेशिक चीन की एक विशेषता यह है कि गणराज्य के प्रथम वर्ष से ही नये और पुराने युद्ध सरदारों के विभिन्न गुट, जिनका समर्थन विदेशी साम्राज्यवाद तथा घरेलू दलाल पूंजीपति वर्ग और स्थानीय निरंकुश तत्वों और बुरे शरीफ जादों का वर्ग करते है, एक दूसरे के खिलाफ युद्धरत रहते हैं। ऐसी घटना न तो दुनिया के किसी साम्राज्यवादी देश में दिखाई देती है और न प्रत्यक्ष साम्राज्यवादी शासन के अधीन किसी उपनिवेश में। इस प्रकार की घटना केवल चीन जैसे देश में दिखाई देती है, जो अप्रत्यक्ष साम्राज्यवादी शासन के अधीन है। इसके दो कारण है। एक तो, स्थान गत कृषि अर्थव्यवस्था (न कि एक सूत्र में बंधी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था), और दूसरे विभाजित करने व शोषण करने के लिए प्रभाव क्षेत्र बनाने की साम्राज्यवाद की नीति। श्वेत शासन व्यवस्था के अंदर बहुत दिनों तक चलने वाली फूट और लड़ाइयां यह परिस्थिति पैदा कर देती है कि श्वेत राजनीतिक सत्ता के घेरे के भीतर कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में एक या कई छोटे लाल इलाके पैदा हो सकते है और कायम रह सकते हैं।...

"दूसरे, वे क्षेत्र जहां चीन की लाल राजनीतिक सत्ता का उदय सबसे पहले हुआ और जहां वह बनी रह सकती है, ऐसे क्षेत्र नहीं है जिन पर जनवादी क्रांति का प्रभाव न पड़ते हो।...

"तीसरे, छोटे इलाकों में जनता की राजनीतिक सत्ता ज्यादा दिन टिकेगी या नहीं, यह इस बात पर निर्भर है कि राष्ट्रव्यापी क्रांतिकारी परिस्थिति बराबर विकसित होती रहती है या नहीं।...

"चौथे, पर्याप्त शक्तिशाली नियमित लाल सेना का होना लाल राजनीतिक सत्ता के बने रहने के लिए आवश्यक है।...

"पांचवे, लाल राजनीतिक सत्ता के ज्यादा दिनों तक टिके रहने और विकसित होने के लिए ऊपर कही गई शर्तों के अलावा एक अन्य महत्वपूर्ण शर्त यह है कि कम्युनिस्ट पार्टी के संगठन शक्तिशाली हों और उसकी नीति गलत न हो।" (माओ,

'चीन में लाल सत्ता क्यों कायम रह सकती है', वही, ग्रन्थ-1, पृष्ठ 94-98)

"किसी देश में श्वेत राजनीतिक सत्ता के घेरे के अन्दर लाल राजनीतिक सत्ता के मातहत एक या कई छोटे इलाके पैदा हो जाना एक ऐसा घटना क्रम है जो आज के संसार में केवल चीन में ही पैदा हो सका है। विश्लेषण करने पर हमें पता चलता है कि ऐसा होने का एक कारण चीन में दलाल पूंजीपति वर्ग और स्थानीय निरंकुश तत्वों व बुरे शरीफजादों के वर्ग के अन्दर लगातार फूट पड़ते रहना और लड़ाइयों होते रहना है। जब तक इन वर्गों के भीतर फूट पड़ती रहेगी और लड़ाइयां होती रहेंगी, तब तक मजदूर-किसानों की सशस्त्र स्वाधीन शासन-व्यवस्था का बने रहना और बढ़ते जाना भी संभव रहेगा। इसके अलावा, इस सशस्त्र स्वाधीन शासन व्यवस्था के अस्तित्व व विकास के लिए निम्नलिखित शर्तें भी जरूरी हैं - (1) एक बहुत अच्छा जन-आधार, (2) एक बहुत अच्छा पार्टी संगठन, (3) एक काफी शक्तिशाली लाल सेना, (4) फौजी कार्यवाहियों के लिए उपयुक्त धरातल, (5) रसद के लिए पर्याप्त आर्थिक शक्ति।" (माओ, 'चिंड.काड.शान पहाड़ों में संघर्ष', वही, ग्रन्थ-1, पृष्ठ 109-110)

इस तरह माओ ने बहुत ही स्पष्ट रूप में बताया कि चीन की क्रांति ने एक ऐसा रास्ता ग्रहण किया है जैसा अब तक कहीं नहीं हुआ है। उन्होंने इसके विशिष्ट चीनी कारण भी गिनाए। इस रास्ते के विशिष्ट स्वरूप के कारण ही पहले से इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता था। इसी कारण स्टालिन या कौमिन्टर्न से पहले ही इसकी भविष्यवाणी करने की उम्मीद करना बेवकूफी होगी।

चीनी क्रांति के रास्ते के इस विशिष्ट स्वरूप के कारण एक अन्य विशेषता भी पैदा हुई जो चीनी क्रांति को रूसी क्रांति से और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के व्यवहार को उस समय तक की अन्य कम्युनिस्ट पार्टियों के व्यवहार से बिल्कुल अलग करती है। यह ऐसी विशेषता जो कौमिन्टर्न के निर्देशों के बिलकुल विपरीत जाती है ।

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, चीनी क्रांति के दीर्घकालीन युद्ध, आधार-क्षेत्र और देहातों से शहरों के घेरने का रास्ता ग्रहण किया। इस रास्ते के कारण स्वाभाविक तौर से कम्युनिस्ट पार्टी का कार्य देहातों में केन्द्रित हो गया। उसका केन्द्रीय आधार बड़े औद्योगिक केन्द्रों के मजदूरों में होने के बदले (जैसा कि कौमिन्टर्न निर्देशित कर रहा था) देहातों के किसानों (मुख्यतः सर्वहारा, अर्ध सर्वहारा व गरीब किसान) में हो गया। यह ऐसी चीज थी जो पहली से (आधार-क्षेत्र) से स्वभावतः निकलती थी लेकिन जो कम्युनिस्ट पार्टी की प्रचलित अवधारणा के बिल्कुल विपरीत थी। प्रचलित धारणा यह थी कि कम्युनिस्ट पार्टी मजदूर वर्ग की पार्टी है और इसका सबसे पहले और सबसे केन्द्रीय आधार मजदूर वर्ग में होना चाहिए। यह ऐसी स्वयं सिद्ध बात थी जिस पर बात करने की कोई जरूरत ही नहीं थी और यदि इस मामले में कोई बात होती थी तो यही कि व्यवहार में यदि ऐसा नहीं है तो इसे कैसे ठीक किया जाए। इस संदर्भ में हम कौमिन्टर्न के निदेशों को पहले ही देख चुके हैं। खुद रूसी कम्युनिस्ट पार्टी का मूल आधार औद्योगिक मजदूर वर्ग के बीच रहा था।

लेकिन चीन में यह हो नहीं सकता था। चूंकि क्रांति का केन्द्र देहात थे, इसीलिए पार्टी को भी वहीं बनना था और उसमें गैर औद्योगिक सर्वहारा तत्वों की प्रधानता होनी थी।

"...चीन में सशस्त्र संघर्ष मूलतः एक किसान युद्ध है और किसानों के साथ पार्टी के संबंध तथा किसान युद्ध के साथ उसके निकट संबंध बिलकुल एक ही है।" (माओ, "कम्युनिस्ट" पत्रिका का परिचय, ग्रन्थ-2, पृष्ठ 503)

"चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का सशस्त्र संघर्ष सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में चलाए

जा रहे किसान युद्ध का रूप धारण कर लेता है।..." (वही, पृष्ठ 510)

लेकिन मुख्यतः देहाती क्षेत्रों में केन्द्रित होने के बावजूद चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने शहरों में काम बन्द नहीं किया। पार्टी ने लगातार जोर दिया कि शहरों में भी काम को बढ़ाया जाय।

> "... देहाती आधार क्षेत्रों में काम करने पर जोर देने का मतलब यह नहीं होता कि शहरों में और अन्य विशाल देहाती क्षेत्रों में, जो अभी तक दुश्मन के शासन में हैं, काम करना छोड़ दिया जाय; इसके विपरीत, शहरों में और इन विशाल देहाती क्षेत्रों में काम किए बगैर हमारे देहाती आधार क्षेत्र अलगाव की स्थिति में पड़ जाएंगे और क्रांति पराजित हो जाएगी। यही नहीं, क्रांति का अंतिम उद्देश्य है शहरों पर, यानि दुश्मन के अड्डों पर कब्जा कर लेना, और जब तक शहरों में काफी काम नहीं किया जाएगा तब तक यह उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता।" (माओ, 'चीनी क्रांति और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी', पृष्ठ 558-559)

> "1927 से लेकर आज तक हमारे कार्य का गुरूत्व केन्द्र गांव ही रहे हैं- गांवों में अपनी ताकत बटोरना, शहरों को घेरने के लिए गांवों का इस्तेमाल करना और फिर शहरों पर कब्जा कर लेना। इस तरीके से काम करने का काल अब बीत चुका है। 'शहर से गांव की तरफ जाने' तथा शहर द्वारा गांव का नेतृत्व करने का काल अब प्रारंभ हो गया है। पार्टी के कार्य का गुरूत्व केन्द्र गांव से हटकर शहर में आ गया है।..." (माओ, 'चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की सातवीं केन्द्रीय कमेटी के दूसरे पूर्ण अधिवेशन में रिपोर्ट', 5 मार्च, 1949, वही, ग्रन्थ-4, पृष्ठ 613-614)

कुल मिलाकर यह थी माओ की नव-जनवादी क्रांति।

VI

नव जनवादी क्रांति के बाद

मार्क्सवाद-लेनिनवाद और चीन की नव-जनवादी क्रांति के संबंध पर बात करते हुए माओ ने कहा था:

> "...हमारी पार्टी ने शुरू से ही मार्क्सवाद-लेनिनवादी सिद्धान्त को अपना आधार बनाया है, क्योंकि मार्क्सवाद - लेनिनवाद दुनिया के सर्वहारा वर्ग की सबसे ज्यादा सही और सबसे ज्यादा क्रांतिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का निचोड़ है। जब मार्क्सवाद-लेनिनवाद को सर्वव्यापी सच्चाई को चीनी क्रांति के ठोस अमल के साथ मिलाया जाने लगा, तो चीनी क्रांति ने एक बिल्कुल नयी शकल अख्तियार कर ली तथा नव-जनवाद की एक समूची ऐतिहासिक मंजिल का उदय हो गया। मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त और विचारधारा से लैस होकर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने चीनी जनता के लिए एक नवीन कार्यशैली को खोज निकाला है, एक ऐसी कार्यशैली को जो मुख्यतः सिद्धान्त को व्यवहार से मिलाती है, जनता के साथ घनिष्ठ संपर्क कायम करती है और आत्म आलोचना के तरीके पर अमल करती है।" (माओ, 'मिलीजुली सरकार के बारे में', वही, ग्रन्थ-3, पृष्ठ 480-481)

माओ के इस कथन में कुछ बातें साफ हैं। उन्होंने चीन के नव-जनवाद को "मार्क्सवाद-लेनिनवाद की सर्वव्यापी सच्चाई को चीनी क्रांति के ठोस अमल के साथ मिलाने" का परिणाम माना। इसे उन्होंने मार्क्सवादी का बना-बनाया सूत्र मानने के बदले सिद्धान्त को व्यवहार के साथ मिलाने का परिणाम बताया। यहां यह गौरतलब है कि उन्होंने यह बात तब

कही जब कौमिन्टर्न की उपनिवेशों-अर्धउपनिवेशों में क्रांति पर प्रस्थापनाएं मौजूद थी जो मोटा-मोटी वही थी जो नव जनवाद की थीं-कार्यभार, वर्गों को लामबंदी के मामले में। यानि यह बात कहते वक्त वे बहुत साफ थे कि 'कठमुल्लावाद व्यवहार से नाता तोड़ लेता है' और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की कार्यशैली की विशेषता ही यह थी कि वह सिद्धान्त को व्यवहार से मिलाती थी।

दूसरी गौरतलब बात यह है कि माओ यहां नव-जनवाद की समूची ऐतिहासिक मंजिल की बात करते हैं। यहां यह याद रखना होगा कि रूसी क्रांति में बुर्जुआ जनवादी क्रांति के कार्यभारों को एक अस्थाई कार्यभार माना जाता था। हालांकि कोई यह नहीं जानता था कि ये कार्यभार कब पूरे होंगे लेकिन सभी यह मानते थे कि ये कार्यभार सर्वहारा वर्ग के अस्थाई, फौरी कार्यभार हैं। इसीलिए इसे पूरा करने में वर्गों की लामबंदी वगैरह की चर्चा करते हुए कार्यनीति की बात की जाती थी। हम पहले ही कह चुके हैं कि ऐसा इसलिए था कि पिछड़ा होने के बावजूद रूस एक पूंजीवादी देश था तथा वह इतना विकसित था कि 1917 में दोनों क्रांतियां एकदम पास-पास आ गईं। इसके मुकाबले चीन एक अर्ध - सामंती देश था, जिसमें पूंजीवाद का विकास बहुत कम हुआ था तथा जहां सर्वहारा की संख्या बहुत कम थी। ऐसे में दोनों क्रांतियां स्पष्ट तौर पर अलग थीं-काल में। वे स्पष्ट तौर पर दो चरणों में विभाजित थीं। नव-जनवाद की एक समूची ऐतिहासिक मंजिल थी।

परन्तु चीन की नवजनवादी क्रांति की विशिष्टता उसके सिद्धान्त में उतनी नहीं थी, जितने व्यवहार में; उसके कार्यभारों में उतनी नहीं थी, जितना उन्हें पूरा करने के तरीकों में। जैसा कि हम पहले ही देख आये हैं, बुर्जुआ जनवादी क्रांति और समाजवादी क्रांति के संबंधों के मामले में चीन की नवजनवादी क्रांति मूलतः रूसी क्रांति का अनुसरण कर रही थी। यह बात कि बुर्जुआ जनवादी क्रांति सर्वहारा के नेतृत्व में होगी, बुर्जुआ के नेतृत्व में नहीं; कि इसमें सर्वहारा का मुख्य संश्रयकारी किसान होगा; कि इसमें बुर्जुआ वर्ग दुलमुल दोस्त होगा; कि इस क्रांति का उद्देश्य बुर्जुआ अधिनायकतत्व नहीं बल्कि मजदूरों-किसानों का अधिनायकत्व कायम करना होगा; कि यह क्रांति बिना रूके, परिस्थितियों के हिसाब से समाजवादी क्रांति में संक्रमण कर जायेगी, ये सारी बातें लेनिन ने रूसी क्रांति में ही स्थापित कर दी थीं तथा फरवरी व अक्टूबर क्रांतियों ने इसे पुष्ट किया था। इसी तरह उपनिवेशों व अर्धउपनिवेशों के मामले में बुर्जुआ जनवादी क्रांति में साम्राज्यवाद विरोध राष्ट्रीय मुक्ति का भी कार्यभार जुड़ जाता है, यह बात भी कौमिन्टर्न व स्टालिन ने पहले ही स्थापित कर दी थी। यानि बुर्जुआ जनवादी क्रांति के कार्यभार, उसमें वर्गों की लामबंदी तथा उसका भविष्य (संक्षेप में 'कार्यक्रम') सिद्धान्त रूप में पहले ही सूत्रित हो गये थे। इस मामले में चीनी क्रांति ने कुछ नया करने के बदले चीनी परिस्थितियों के हिसाब से उसे ढाला तथा अपनी क्रांति के अनुरूप बनाया। यह चीनी नवजनवादी क्रांति का कोई नया योगदान नहीं था। हां, आम सूत्रों को कैसे विशिष्ट परिस्थितियों से मिलाएं, इसे चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने बहुत शानदार ढंग से प्रस्तुत किया, मसलन चीनी बुर्जुआ वर्ग के चरित्र निर्धारण व उसकी क्रांति में भूमिका के मामले में।

चीनी नव-जनवादी क्रांति ने जो नयी चीज प्रस्तुत की, और जो बिल्कुल अभिनव थी, वह थी क्रांति का रास्ता। जैसा कि माओ ने 1928 में ही लाल सत्ता के बारे में, रिपोर्ट करते हुए लिखा था, यह ऐसी घटना थी, जो इसके पहले कहीं नहीं हुई थी। दीर्घकालीन लोक युद्ध, आधार क्षेत्र और देहातों से शहरों को घेरने की कार्यप्रणाली वह अभिनव रास्ता थी, जो तब तक कहीं और नहीं अपनाया गया था। आज भी जो लोग चीन की नव जनवादी क्रांति को मॉडल मानते हुए (यहां तक कि उसे माओ विचारधारा का अभिन्न अंग मानते हुए) उसे अपने देश में लागू करने की बात करते हैं वे भी मूलतः नव जनवादी क्रांति के

इसी पहलू पर, रास्ते के पहलू पर जोर दे रहे होते हैं। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं; चीनी नव जनवादी क्रांति का 'कार्यक्रम' अपने **आम रूप** में वही है जो कौमिन्टर्न ने 1928 में व उसके भी पहले लेनिन ने प्रस्तुत किया था। उसे हर देश के विशिष्ट स्वरूप के अनुरूप ढालना होगा। लेकिन चीनी क्रांति में जो चीज बिलकुल नयी थी और जो कौमिन्टर्न द्वारा प्रस्तुत लाइन से एकदम भिन्न थी - वह था 'क्रांति का रास्ता'।

और क्रांति का यही पहलू है, जिस पर आज क्रांतिकारी कम्युनिस्ट आंदोलन सबसे ज्यादा कठमुल्लेपन का परिचय दे रहा है। यहीं वह ठोस व्यवहार से सबसे ज्यादा नाता तोड़े हुए हैं। चीनी क्रांति की यदि सबसे शानदार विशेषता यह थी कि उसने आम सूत्रों को ठोस परिस्थितियों के हिसाब से ढाला तथा ठोस परिस्थितियों के हिसाब से नये रास्ते को इजाद किया (कौमिन्टर्न के विपरीत निर्देशों के बावजूद) तो इस क्रांति के पद चिन्हों पर चलने वाले लोग उतने ही ज्यादा कठमुल्लावाद का परिचय दे रहे हैं। वे अपने को महान गुरू के एकदम नाकारा 'शिष्य' साबित कर रहे हैं। वे माओ और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ वही कर रहे हैं जो अतीत में धर्मों के साथ हुआ था। वे महान गुरू की जीवंत शिक्षाओं को मृत सूत्रों में बदलकर उसी से चिपक गये हैं, जबकि जीवन कभी का आगे बढ़ चुका है।

होना तो यह चाहिए था कि चीनी क्रांति के अनुभवों में से जिस चीज का सबसे कम अनुसरण किया जाता, वह था क्रांति का रास्ता। यह चीन की एकदम विशिष्ट स्थितियों से पैदा हुआ था और स्थितियां बदलते ही उसमें परिवर्तन आ जाना लाजिमी था। माओ ने बहुत स्पष्ट रूप में इन विशिष्ट स्थितियों का चित्रण भी किया था। लेकिन हुआ एकदम उल्टा। एकदम ठोस स्थितियों से उपजे इस रास्ते ने सबसे ज्यादा 'आम सच्चाई' का दर्जा पा लिया। यह तब जबकि दुनिया की सभी क्रांतियों ने यह बात प्रमाणित कर दी है कि किन्हीं भी दो क्रांतियों का रास्ता कभी एक नहीं होता - उनके कार्यभार भले एक हों। यह भी एक ऐतिहासिक विडिम्बना ही है कि दुनिया के सबसे क्रांतिकारी लोग (परिवर्तन जिनका अपना गुण व लक्ष्य होता है) इस **आम नियम** को नकारते हुए कि क्रांतियों का कोई **आम रास्ता** नहीं होता, नव जनवादी क्रांति के एक **आम रास्ते** पर अड़े हुए हैं।

लेकिन आइये देखें कि खुद माओ और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी क्या कहते हैं? 'चीन में लाल सत्ता क्यों कायम रह सकती है' लेख की एक टिप्पणी में माओ की रचनाओं का प्रकाशन करने वाली चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी की समिति ने चीन के विशिष्ट रास्ते के बारे में बताया कि क्यों 1945 के बाद की बदली हुई परिस्थितियों में यह रास्ता (दीर्घकालीन युद्ध, आधार क्षेत्र इत्यादि) अन्य उपनिवेशों में भी लागू हो सकता है। ये बदली हुई परिस्थितियां हैः द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान की उठापटक के दौरान उपनिवेशों की जनता द्वारा अर्जित की गयी ताकत (जनाधार व सैन्य दोनों), सोवियत संघ की बढ़ी हुई ताकत व समाजवादी खेमा, चीनी क्रांति की विजय, साम्राज्यवादी व्यवस्था का लड़खड़ा जाना। इसके बाद यह टिप्पणी कहती हैः

> "...इस तरह, जैसा कि चीनी जनता ने किया है, पूर्व के सभी या कम से कम कुछ उपनिवेशों की जनता लम्बी अवधि के लिए बड़े या छोटे क्रांतिकारी आधार-क्षेत्रों और क्रांतिकारी राजनीतिक सत्ता को बनाए रख सकती है और देहातों से शहरों को घेरने वाला क्रांतिकारी युद्ध चला सकती है और कदम-ब-कदम शहरों पर अधिकार करके अपने-अपने देश में राष्ट्रव्यापी विजय प्राप्त कर सकती है। प्रत्यक्ष साम्राज्यवादी शासन के अधीन उपनिवेशों में स्वाधीन शासन व्यवस्थाएं कायम करने के बारे में कामरेड माओ त्सेतुंड का जो मत 1928 में था, वह नयी परिस्थिति के कारण बदल गया है।" (वही, टिप्पणी संख्या-7, पृष्ठ 106-107)

समिति ने यह बात 1951 में कही थी।

इस टिप्पणी में तीन बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं। पहली बात तो यह कि यह टिप्पणी दुनिया के सारे उपनिवेशों की बात नहीं करती बल्कि यह केवल **पूर्व** के उपनिवेशों की बात करती है। यहां पूर्व का मतलब साफ है। ये वे उपनिवेश है जिन पर द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापान ने कब्जा कर लिया था - बरतानिया, अमरीका, फ्रांस व नीदरलैण्ड को पछाड़ कर। यानि एशिया, अफ्रीका के अन्य उपनिवेशों के बारे में भी यह सभी के बारे यह बात दृढ़ता पूर्वक नहीं कहती। वह कहती है **सभी या कम से कम कुछ**। यानि पूर्व में भी कुछ ऐसे देश हो सकते हैं जिन पर यह बात लागू नहीं होगी। तीसरी बात यह है कि टिप्पणी यह कहती है कि विश्व परिस्थितियां बदल जाने के कारण माओ का 1928 का मत बदल गया है। यानि यह रास्ता मार्क्सवाद का ऐसा सार्वभौम नियम नहीं है जो सब जगह लागू हो बल्कि किसी देश की अंदरूनी व विश्व परिस्थिति के हिसाब से यह लागू हो सकता है या नहीं लागू हो सकता है। पूर्व के कुछ उपनिवेशों में यह 1945 के बाद लागू हो सकता था जबकि उसके पहले यानि 1928 में या 1935 में लागू नहीं हो सकता था, हालांकि दोनों ही समय में इन देशों में बुर्जुआ जनवादी क्रांति (नव-जनवादी क्रांति) होनी थी।

जो लोग इस टिप्पणी को आधार बनाकर यह कहते हैं कि चीन का रास्ता सभी जगह लागू होगा वे खुद इस टिप्पणी को ही धता बता रहे होते हैं। इसी तरह जो इस रास्ते को माओ विचारधारा का अभिन्न अंग मानकर इसे सभी जगह लागू करने की बात करते हैं वे यह बात भूल जाते हैं कि यह ऐसी बात है जो विशुद्धतः देश की अंदरूनी और विश्व परिस्थिति पर निर्भर करती है। एक परिस्थिति में वह लागू होती है, दूसरे में नहीं। 1928 में पूर्व के उपनिवेशों में यह लागू नहीं होती, जबकि 1951 में यह उनमें से कुछ पर लागू होती है। ऐसे में यह तो तर्क-वितर्क किया जा सकता है कि किसी देश के आंतरिक व बाह्य हालात तथा विश्व परिस्थिति इसे लागू करने के अनुकूल है या नहीं, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि चूंकि यह माओ विचारधारा का अभिन्न अंग है, अतः इसे हर जगह लागू होना चाहिए या जहां भी नव-जनवादी क्रांति होगी, यह रास्ता लागू होगा। माओ विचार धारा का अभिन्न अंग होना तो दूर, यह नव-जनवादी क्रांति का भी अभिन्न अंग नहीं है।

स्वयं माओ ने इस संबंध में यह बात कही थी:

> "चीन की क्रांति के अनुभव, यानि देहाती आधार-क्षेत्रों का निर्माण करना, देहातों की तरफ से शहरों को घेर लेना और अंत में शहरों पर कब्जा कर लेना, **संभवतः आपके बहुत से देशों में पूरी तरह लागू नहीं हो सकेंगे**, हालांकि वे संदर्भ सामग्री के तौर पर आपके काम आ सकते हैं। मैं आपको विनम्रता पूर्वक परामर्श देना चाहता हूं कि चीन के अनुभवों को यांत्रिक रूप से लागू न करें। **किसी भी देश के अनुभव केवल संदर्भ सामग्री के रूप में ही काम आ सकते हैं, उन्हें कठमुल्लासूत्र नहीं समझना चाहिए।**
>
> मार्क्सवाद-लेनिनवाद का सार्वभौमिक सत्य और आपके अपने देश की ठोस स्थितियां-इन दोनों को एक दूसरे से मिलाना जरूरी है।" (माओ त्से तुंग 'हमारी पार्टी के इतिहास के कुछ अनुभव', की संकलित रचनाएं ग्रन्थ-5, प्रोग्रसिव पब्लिकेशन, दिल्ली, 2001, पृष्ठ-303, जोर हमारा)

कामरेड माओ एक महान द्वन्द्ववादी थे। अपने समय की हर चीज पर उनकी द्वन्द्ववादी नजर थी। वे वैसे नहीं थे कि खुद अपनी ही सफलताओं के बन्दी बन जाते। वे हर सफलता-असफलता को छोड़कर आगे बढ़ जाने वाले व्यक्ति थे। इसीलिए चीनी क्रांति की सफलता उन्हें नहीं फुसला सकती थी कि वे चीनी क्रांति के विशिष्ट अनुभव को सभी

देशों की नवजनवादी क्रांतियों का आम नियम घोषित कर दें। पर दुर्भाग्य ! माओ जितने द्वन्द्ववादी थे, अपने को उनका 'शिष्य' कहने वाले उतने ही अधिभूतवादी। जैसे गौतम बुद्ध ने भगवान को नकारा तो उनके शिष्यों ने खुद उन्हें ही भगवान घोषित कर दिया, कुछ उसी तरह माओ के 'शिष्यों' ने माओ की शिक्षाओं के विरूद्ध उनके विशिष्ट अनुभवों को आम नियम घोषित कर दिया। माओ ताउम्र कठमुल्ला सूत्रों के खिलाफ संघर्ष करते रहे और खुद उनकी शिक्षाएं और अनुभव कठमुल्ला सूत्र बना दिया गये।

माओ का उपरोक्त उद्धरण लातीन अमेरिका की कुछ कम्युनिस्ट पार्टियों के प्रतिनिधियों के साथ बातचीत (दिसंबर 1956 में) के अंश हैं। इसमें माओ दो बातें साफ कहते हैं। एक तो यह कि चीन की क्रांति के रास्ते के अनुभव (आधार-क्षेत्र) इत्यादि संभवतः लातीन अमेरिका के बहुत से देशों में पूरी तरह लागू नहीं हो सकेंगे। यह उससे बिलकुल भिन्न बात है जो आज कही जाती है यानि यह कि चीन की क्रांति के अनुभव हर जगह राई-रत्ती लागू होंगे और यह कि माओ विचारधारा मानने वाले हर व्यक्ति को यह बात चुपचाप मान लेनी चाहिए। ध्यान रखने की बात है कि यह बातचीत 1956 की है। तब से 45 साल गुजर चुके हैं और दुनिया काफी कुछ बदल चुकी है। एशिया-अफ्रीका और लातीन अमेरिका के पहले के उपनिवेशों-अर्धउपनिवेशों की स्थिति ज्यादातर काफी बदल गयी है। ऐसे में चीनी रास्ते को लागू करने की बात इन देशों की स्थितियों से कहीं ज्यादा बेमेल हो गयी है। हां, हमें आश्चर्य नहीं होगा यदि महान द्वन्द्ववादी माओ के ये अधिभूतवादी 'शिष्य' हमसे यह कहें कि दुनिया तो 1956 में या 1963 की स्थिति में ठहरी हुई है ।

दूसरी ओर यह बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण बात माओ यह करते हैं कि चीनी क्रांति के रास्ते को नव जनवादी क्रांति का आम नियम घोषित करने के बदले उसे महज चीनी क्रांति का अनुभव कहते हैं और जोर देकर कहते हैं कि किसी भी देश के अनुभव को केवल **संदर्भ सामग्री** के रूप में लेना चाहिए, कठमुल्ला सूत्र नहीं समझना चाहिए। (चीन में कठमुल्लावाद से लगातार लड़ते रहने के कारण माओ को अंदेशा था कि चीनी क्रांति के अनुभव को भी कठमुल्ला सूत्र बना दिया जाएगा और उनका अंदेशा सच निकला।) संदर्भ सामग्री कहने का मतलब साफ है। यानि उसे आप पहले के अनुभव के तौर पर ग्रहण कर उसका अध्ययन करें और जो आपके लिए मौजूं है उसे लें बाकी छोड़ दें। उसे जस का तस ले लेने का प्रयास न करें। लेकिन माओ का यह विनम्रता पूर्वक परामर्श काम न आया। उनके 'शिष्यों' ने शायद इसे महज 'भद्रता' समझा और चीनी क्रांति के अनुभव को अपने यहां यांत्रिक तरीके से लागू करना शुरू कर दिया।

यदि चीन की नवजनवादी क्रांति के विशिष्ट रास्ते (आधार-क्षेत्र इत्यादि) को माओ के 'शिष्यों' ने आम नियम बना दिया तो यह स्वाभाविक सी बात है कि खुद नव जनवादी क्रांति के कार्यक्रम को भी एक जड़ सूत्र बना दिया जाए। इसके साथ ऐसा किए जाने की और भी ज्यादा संभावना है क्योंकि यह रास्ते के मुकाबले ज्यादा आम चीज है।

माओ के 'शिष्यों' ने नवजनवादी क्रांति के कार्यक्रम के साथ ऐसा किया है और यह इसके बावजूद कि लेनिन ने 1906 में ही यह बात कही थी कि यदि रूस में बुर्जुआ जनवादी क्रांति के बदले शीपोन मार्का संवैधानिक सुधार भी लागू होते हैं तो वे 10-15 सालों में रूस के देहातों में कृषि सम्बंधों को बदल देंगे और कृषि क्रांति का महत्व समाप्त हो जाएगा, जमीन के पुनर्वितरण का मुद्दा नहीं रह जायगा। लेनिन, क्रमिक, सुधारवादी परिवर्तनों के महत्व को स्वीकार करते थे, इस हद तक कि ऐसे परिवर्तन क्रांति के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न को भी कालान्तर में गौण बना सकते हैं। परन्तु हमारे यहां नव जनवादी क्रांति के समर्थक ऐसा नहीं मानते। वे तो यह मानकर चलते हैं कि जब तक किसी देश में बुर्जुआ

जनवादी क्रांति की मंजिल में ही रहेगा (और यह समस्त दुनिया के व्यवहारिक अनुभव के विरूद्ध)। मजे की बात यह है कि परिवर्तन हीन, जड़ दुनिया की अपनी अवधारणा के लिए वे महान द्वन्द्ववादी माओ की ही कुछ बातों को आधार बनाते हैं और प्रकारान्तर से साबित करने का प्रयास करते हैं कि द्वन्द्ववाद का यह नियम गलत है कि मात्रात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तनों को जन्म देते हैं। नवजनवादी क्रांति के अपने जड़ कार्यक्रम को स्थापित करने के लिए वे माओ के जिस कथन को बहुधा आधार बनाते हैं।

आइये उसे देखें।

माओ का वह कथन यह है:

"सारे देश में 90 प्रतिशत से अधिक लोग नव-जनवादी राजनीति तथा नव-जनवादी अर्थतंत्र वाले इस गणराज्य के पक्ष में है, इसके अलावा दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

"क्या पूंजीपति वर्ग के अधिनायकत्व वाले पूंजीवादी समाज की स्थापना के रास्ते पर चला जाए? निश्चय ही यह यूरोपीय तथा अमरीकी पूंजीपतियों द्वारा अपनाया गया पुराना रास्ता है। लेकिन कोई इसे चाहे या न चाहे **तो अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति और न ही घरेलू परिस्थिति चीन को ऐसा करने की अनुमति देती है।**

"अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति को देखा जाए तो यह रास्ता अवरूद्ध हो चुका है। मूलतः मौजूदा **अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति पूंजीवाद तथा समाजवाद के बीच संघर्ष की परिस्थिति है जिसमें पूंजीवाद का पतन हो रहा है और समाजवाद का उत्थान।** पहले तो अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद, यानि साम्राज्यवाद, चीन में पूंजीपति वर्ग के अधिनायकत्व वाले पूंजीवादी समाज की स्थापना की इजाजत नहीं देगा। वस्तुतः आधुनिक चीन का इतिहास चीन पर साम्राज्यवादी आक्रमण का, चीन की स्वाधीनता और उसके पूंजीवादी विकास के प्रति साम्राज्यवादी विरोध का ही इतिहास है। चीन में पहले की क्रांतियां इसलिए विफल हुई क्योंकि साम्राज्यवाद ने उनका गला घोंट दिया, और असंख्य क्रांतिकारी शहीद इसके प्रति रोष प्रकट करते हुए शहीद हो गये। आज, एक शक्तिशाली जापानी साम्राज्यवाद चीन में जबरन घुसता चला आ रहा है और उसे एक उपनिवेश में बदल देना चाहता है; हमारे देश में चीन चीनी पूंजीवादी का विकास नहीं कर रहा बल्कि जापान जापानी पूंजीवाद का विकास कर रहा है; और हमारे देश में चीनी पूंजीपति वर्ग नहीं बल्कि जापानी पूंजीपति वर्ग अपना अधिनायकत्व चला रहा है। यह सच है कि यह एक ऐसा काल है जिसमें साम्राज्यवाद मृत्यु-शय्या पर छटपटा रहा है - "साम्राज्यवाद मरणासन्न पूंजीवाद है"। मगर चूंकि वह मर रहा है, इसलिए अपनी जिन्दगी बनाए रखने के लिए उपनिवेशों और अर्धउपनिवेशों पर वह और भी अधिक निर्भर है और किसी भी उपनिवेश या अर्ध उपनिवेश को वह इस बात की इजाजत नहीं देगा कि वह अपने पूंजीपति वर्ग के अधिनायकत्व वाले पूंजीवादी समाज जैसी किसी चीज की स्थापना करे। चूंकि जापानी साम्राज्यवाद गंभीर आर्थिक तथा राजनीतिक संकट के दलदल में फंस गया है, यानि वह मर रहा है, इसीलिए **वह जरूर चीन पर आक्रमण करेगा, उसे जरूर एक उपनिवेश में बदल देगा और इस प्रकार चीन में पूंजीपति वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना करने तथा राष्ट्रीय पूंजीवाद का विकास करने के रास्ते को अवरूद्ध कर देगा।**

"दूसरे, समाजवाद इसकी इजाजत नहीं देगा । दुनिया की सारी साम्राज्यवादी ताकतें हमारी दुश्मन हैं, और समाजवादी देश तथा अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग की सहायता के

> बिना चीन अपनी स्वायत्तता प्राप्त नहीं कर सकता।... विशेषकर सोवियत संघ की सहायता प्रतिरोध - युद्ध में चीन की अंतिम विजय के लिए एकदम अपरिहार्य है। सोवियत संघ की सहायता से इन्कार करने से क्रांति विफल हो जाएगी। ...दुनिया आज क्रांतियों और युद्धों के एक नये युग में है, एक ऐसे युग में जिसमें पूंजीवाद असंदिग्ध रूप से मर रहा है और समाजवाद असंदिग्ध रूप से फल-फूल रहा है। इन **परिस्थितियों** में, चीन में साम्राज्यवाद और सामंतवाद को पराजित करने के बाद, पूंजीपति वर्ग के अधिनायकत्व वाले पूंजीवादी समाज की स्थापना की इच्छा करना क्या महज ख्याली पुलाव पकाना नहीं है?" (माओ, 'नवजनवाद के बारे में', जनवरी 1940, वही, ग्रन्थ-2, पृष्ठ 628-631, जोर हमारा)

द्वन्द्ववाद के बुनियादी नियमों का पालन करते हुए हमें सबसे पहले तो यह लक्षित करना चाहिए कि माओ ने ये बातें 1940 में कही थीं और माओ जब भी वर्तमान परिस्थिति की बात करते हैं तब उसका मतलब 1940 की परिस्थिति है। माओ इस परिस्थिति के मुख्य लक्षणों का खुद यहां वर्णन करते हैं।

चीन में पूंजीवाद अधिनायकत्व कायम हो सकता है या नहीं, माओ जब इस पर विचार करते हैं तो वे तब तक की राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति के मूल्यांकन के आधार पर ही इस प्रश्न का उत्तर देते हैं। वे अपने आपको किसी आम प्रस्थापना या सूत्र पर नहीं बल्कि परिस्थिति के आंकलन पर आधारित करते हैं। हालांकि जिस रूप में माओ बातों को रखते हैं वे चीन व उपनिवेशों तथा अर्ध उपनिवेशों के बारे में कुछ आम प्रस्थापनाएं देती हुई लगती हैं लेकिन वस्तुतः वे उस समय की परिस्थिति में ठोस मूल्यांकन मात्र हैं। वे साफ कहते हैं कि

> "न तो **अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति** और न ही **घरेलू परिस्थिति** चीन को ऐसा करने की अनुमति देती है।"

माओ की ये बातें कितनी समय सापेक्ष हैं वह पूंजीवाद-समाजवाद के बारे में तथा जापान के बारे में उस समय के बारे में तथा जापान के बारे में उस समय के माओ के आंकलन दिखाते हैं। माओ कहते है कि मौजूदा परिस्थिति में पूंजीवाद का पतन हो रहा है और समाजवाद का उत्थान। हम जानते हैं कि यह बात तब बिलकुल ठीक थी। उस समय पूंजीवाद का पतन हो रहा था तथा समाजवाद का उत्थान। लेकिन क्या यह बात इस समय, 2001 में सही है। नहीं। पूंजीवाद का पतन आज भी जारी है, हालांकि आज फौरी तौर पर वह उस तरह गंभीर रूप से संकट ग्रस्त नहीं है जैसा 1940 में था। लेकिन क्या समाजवाद का उत्थान हो रहा है? नहीं। 1956 में सोवियत संघ में और 1970 में चीन में पूंजीवादी पुनर्स्थापना के बाद आज समाजवाद फौरी तौर पर पराजय की अवस्था में है। यानि इतिहास उसी तरह आगे नहीं बढ़ा जैसे वह 1940 में बढ़ता दीख रहा था।

यही बात जापान के बारे में भी सच है। जापानी साम्राज्यवाद तब गंभीर संकट से ग्रस्त था तथा वह चीन पर आक्रमण कर उसे अपना उपनिवेश बनाने की कोशिश कर रहा था। लेकिन यह परिस्थिति बदल गई, 1945 के बाद चीनी क्रांति जापानी साम्राज्यवाद के खिलाफ नहीं बल्कि मूलतः अमरीकी साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ कर विजयी हुई।

कहने का मतलब यह है कि चीन के बारे में जब ये बातें कही गई तो बिलकुल ठोस परिस्थिति के मद्देनजर। हां, इसमें पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के आम चरित्र को ध्यान में रखा गया। लेकिन यह आम चरित्र ठोस परिस्थिति में कैसे व्यवहार करता है, यह माओ ने चीन के संदर्भ में प्रस्तुत किया। यदि ऐसा न होता तो सोवियत संघ कभी भी अमरीकी, बरतानवी व फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों के साथ द्वितीय विश्व युद्ध में संयुक्त मोर्चा नहीं बना सकता था।

इन सबसे यह निष्कर्ष निकलता है कि माओ द्वारा चीन के भविष्य के संदर्भ में कही गई इन बातों को सभी उपनिवेशों-अर्धउपनिवेशों पर लागू होने वाले आम नियम मानने के बदले उन्हें ठोस परिस्थिति में ठोस सवाल का ठोस जवाब मानना चाहिए। आज यदि कोई व्यक्ति सामने आता है और किसी खास देश के बारे में ठोस घरेलू व अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति का मूल्यांकन करके बताता है कि वहां पूंजीवाद का विकास हो रहा है या नहीं तथा उसका भविष्य क्या है, तब तो उसकी बात पर सोच-विचार किया जा सकता है। लेकिन यदि कोई यह कहे कि चूंकि माओ ने चीन के बारे में यह बात कही थी, अतः वही यहां भी सच है, तो आप उसे अधिभूतवादी मानने के अलावा कुछ नहीं कर सकते। दुर्भाग्य केवल यह है कि आज क्रांतिकारी कम्युनिस्ट आंदोलन में ऐसे अधिभूतवादियों की भरमार है।

VII

यह संशोधनवाद नहीं है

इन अधिभूतवादियों की दृष्टि में जो कोई भी पहले के औपनिवेशिक या अर्ध-औपनिवेशिक देशों में आज नवजनवादी क्रांति के कार्यक्रम और उसके विशिष्ट चीनी रास्ते से अलग जाने की बात करता है, वह संशोधनवादी है। यानि आज वह नवजनवादी क्रांति के कार्यक्रम को स्वीकार नहीं करता तो वह संशोधनवादी है या यदि वह इस कार्यक्रम को स्वीकार करता है परन्तु इसे पूरा करने के विशिष्ट चीनी रास्ते को स्वीकार नहीं करता तो भी वह संशोधनवादी है।

अब यदि इन अधिभूतवादी महानुभावों के हिसाब से चलें तो लेनिन, मार्क्स व एंगेल्स के संदर्भ में संशोधनवादी थे तथा माओ लेनिन, स्टालिन व कौमिन्टर्न के संदर्भ में संशोधनवादी थे।

जैसा कि हम अपने पूरे पुनरावलोकन में देख चुके हैं कि कम्युनिस्टों द्वारा बुर्जुआ जनवादी क्रांति के संबन्ध में अपनाई गयी नीति हमेशा बदलती रही है। इस संबंध में मार्क्स व एंगेल्स की एक नीति थी (हालांकि वह भी बदलती हुयी) तो लेनिन की दूसरी। यदि इसके कार्यक्रम पर मोटामोटी माओ वही बात कह रहे थे जो स्टालिन व कौमिन्टर्न तो माओ का इसे लागू करने का रास्ता एकदम भिन्न था।

इतिहास के इस सच के साथ यह भी सच है कि जब रूस में लेनिन ने नयी कार्यनीति घोषित की तो उन पर मार्क्स व एंगेल्स के विचारों से विचलन करने का आरोप लगाया गया। एक लम्बे संघर्ष के बाद और अंततः फरवरी व अक्टूबर क्रांतियों ने ही लेनिन की कार्यनीति की सत्यता स्थापित की। तब तक मेंशेविक ज्यादा 'शुद्ध' मार्क्सवादी थे।

इसी तरह जब चीन में माओ ने स्टालिन व कौमिन्टर्न द्वारा प्रस्तुत बुर्जुआ जनवादी क्रांति के कार्यक्रम को (नव-जनवादी क्रांति के रूप में) मोटा-मोटी स्वीकार करते हुए उसे पूरा करने के लिए एक बिलकुल ही नया रास्ता अपनाया- आधार-क्षेत्रों का रास्ता तो उन पर कौमिन्टर्न और उसके भी पहले की 'शुद्ध' मार्क्सवादी लाइन (कि कम्युनिस्ट पार्टी का आधार मुख्यतः शहरी औद्योगिक केन्द्रों में होना चाहिए) से विचलन का आरोप लगा। उनके बारे में यहां तक कहा गया कि वे कम्युनिस्ट नहीं, बल्कि किसान क्रांतिकारी थे। यह यूं ही नहीं हुआ कि बी.टी. रणदिवे जैसे अदने से व्यक्ति ने भी 1948 में माओ और उनकी चीनी क्रांति की लाइन पर छींटाकशी करने की कोशिश की। पार्टी में एक लम्बे संघर्ष के बाद और क्रांति के कुछ बहुत कड़वे अनुभव के बाद ही कहीं जाकर 1935 में माओ की लाइन चीन

की कम्युनिस्ट पार्टी में स्थापित हो सकी। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उसे खुली मान्यता 1950 में मिल सकी जब घोषित किया गया कि चीन की नव जनवादी क्रांति जनता की जनवादी क्रांति (पूर्वी यूरोप सरीखी) का ही एक रूप है।

नव जनवादी क्रांति के बदले आज के भारत में समाजवादी क्रांति की बात करने वाले लोगों को संशोधनवादी कहने वाले मार्क्सवादी सिद्धान्त और इस सिद्धान्त को व्यवहार में लागू करने से पैदा होने वाले कार्यक्रम, रणनीति व रणकौशल में फर्क करना नहीं जानते। वे यह नहीं स्वीकार करते कि मार्क्सवाद के सार्वभौमिक नियम सब जगह लागू होते हैं जबकि इन नियमों को ठोस देश-काल में लागू करने से पैदा हुए कार्यभार व उन्हें पूरा करने के तरीके देश-काल में बदलते रहते हैं। ऐसे ही लोगों को लक्षित करते हुए माओ कहते हैं:

> "मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और स्टालिन के सिद्धान्त सभी जगह लागू होते हैं। हमें इन सिद्धान्तों को जड़-सूत्र नहीं समझना चाहिए बल्कि अपने समस्त कार्यों का पथ-प्रदर्शक मानना चाहिए। इनका अध्ययन करने का मतलब सिर्फ यह नहीं है कि चन्द शब्दों और वाक्यांशों को रट लिया जाए, बल्कि यह है कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद का अध्ययन क्रांति के विज्ञान के रूप में किया जाए। इसका मतलब सिर्फ यह नहीं है कि मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और स्टालिन द्वारा व्यापक वास्तविक जीवन और क्रांतिकारी अनुभव के आधार पर प्रस्तुत किये गए आम नियमों को समझ लिया जाए, बल्कि यह है कि समस्याओं को जांचने-परखने व हल करने के उनके दृष्टिबिन्दु और तरीकों का भी अध्ययन किया जाए।..." (माओ, 'चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिका', वही, ग्रन्थ-2, पृष्ठ 371)

अंत में हम संशोधनवाद क्या है और क्या नहीं है, इसे स्पष्ट करने के लिए स्टालिन को उद्धृत करेंगे जिन्होंने जिनोवियेव द्वारा अपने उन पर लगाये गये संशोधनवाद के आरोपों का खण्डन करते हुए ये बातें कही थीं:

> "अंत में, जिनोवियेव की "संशोधनवाद" की अवधारणा पर कुछ शब्द। जिनोवियेव के अनुसार मार्क्स और एंगेल्स के पुराने सूत्रों में या पृथक प्रस्थापनाओं में कोई सुधार या परिवर्तन और इससे भी ज्यादा नयी स्थितियों के हिसाब से उनका अन्य सूत्रों से प्रतिस्थापन संशोधनवाद है। क्यों, हम पूछते हैं? क्या मार्क्सवाद विज्ञान नहीं है और क्या विज्ञान नये अनुभवों से समृद्ध होते हुए और पुराने सूत्रों में सुधार करते हुए विकसित नहीं होता? ऐसा लगता है कि कारण यह है कि, "संशोधन" का मतलब है "पुनर्विचार करना" और पुराने सूत्र कुछ हद तक पुनर्विचार किये बिना सुधारे या ज्यादा सही नहीं बनाये जा सकते तथा इस कारण पुराने सूत्रों में हर सुधार या परिवर्तन, नया अनुभव व नये सूत्रों से मार्क्सवाद का हर समृद्धिकरण, संशोधनवाद है। स्वभावतः, यह सारा कुछ हास्यास्पद है। लेकिन आप जिनोवियेव के साथ क्या कर सकते हैं जो अपने को हास्यास्पद स्थिति में रख देते हैं और साथ ही कल्पना करते हैं कि वे संशोधनवाद से लड़ रहे हैं!
>
> "उदाहरण के लिए, क्या स्टालिन को यह अधिकार था कि वे एक देश में समाजवाद की विजय के अपने ही पुराने सूत्र (1924) को लेनिन के निर्देशों और उनकी बुनियादी लाइन के अनुसार बदलते और ज्यादा ठीक बनाते? जिनोवियेव के अनुसार उन्हें यह अधिकार नहीं है। क्यों? पुराने सूत्र को बदलने और उसे ज्यादा सही बनाने का मतलब है सूत्र पर पुनर्विचार और जर्मन भाषा में पुनर्विचार का मतलब है संशोधन। इससे क्या स्पष्ट नहीं है कि स्टालिन संशोधनवाद के लिए दोषी है?

> "इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अब हमारे पास संशोधनवाद का एक नया, जिनोवियेव मापदंड है जो मार्क्सवादी सोच को संशोधनवाद का आरोप लगाये जाने के डर के मारे पूर्ण ठहराव की स्थिति में ढकेल देता है।
>
> "यदि, उदाहरण के लिए, पिछली शताब्दी के मध्य में मार्क्स ने यह कहा कि जब पूंजीवाद चढ़ती पर था तब राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर समाजवाद की विजय असंभव थी और लेनिन ने बीसवीं सदी के पन्द्रहवें साल में यह कहा कि जब पूंजीवाद का उतार पर था, जब पूंजीवाद मरणासन्न था, यह विजय संभव थी, तब इसका मतलब यह है कि लेनिन मार्क्स के संबंध में संशोधनवाद के दोषी थे।
>
> "यदि, उदाहरण के लिए, मार्क्स ने पिछली शताब्दी के मध्य में कहा कि 'इंग्लैण्ड के बिना यूरोपीय महाद्वीप के किसी देश के आर्थिक संबंधों में समाजवादी क्रांति या समूचे यूरोपीय महाद्वीप में क्रांति चाय की प्याली में तूफान होगा' और एंगेल्स ने वर्ग संघर्ष के नये अनुभव को ध्यान में रखते हुए बाद में इस प्रस्थापना को बदल दिया और समाजवादी क्रांति के बारे में कहा कि 'फ्रांसीसी इसे शुरू करेंगे और जर्मन इसे समाप्त करेंगे' तो इसका मतलब यह है कि एंगेल्स मार्क्स के संबंध में संशोधनवाद के दोषी थे।
>
> "यदि एंगेल्स ने कहा कि समाजवादी क्रांति को फ्रांसीसी शुरू करेंगे तथा जर्मन समाप्त करेंगे और लेनिन ने सोवियत संघ में क्रांति की विजय को ध्यान में रखते हुए, इस सूत्र को बदल दिया और इसे एक अन्य सूत्र से प्रतिस्थापित कर दिया कि रूसियों ने समाजवादी क्रांति शुरू की तथा जर्मन, फ्रांसीसी व अंग्रेज इसे समाप्त करेंगे तो इसका मतलब यह है कि लेनिन एंगेल्स के संदर्भ में तथा इससे भी ज्यादा मार्क्स के संबंध में संशोधनवाद के दोषी हैं।...
>
> "यदि, उदाहरण के लिए, एंगेल्स और मार्क्स ने पेरिस कम्यून को सर्वहारा की तानाशाही के रूप में परिभाषित किया जो, जैसा कि हम जानते हैं, दो पार्टियों द्वारा नेतृत्व प्रदत्त था जिनमें से कोई भी मार्क्सवादी पार्टी नहीं थी, और लेनिन ने साम्राज्यवाद की स्थितियों में वर्ग संघर्ष के नये अनुभव को ध्यान में रखते हुए बाद में कहा कि कोई भी विकसित सर्वहारा तानाशाही केवल एक पार्टी, मार्क्सवादी पार्टी के नेतृत्व में ही स्थापित हो सकती है तो इसका मतलब यह है कि लेनिन स्वभावतः ही मार्क्स व एंगेल्स के संबंध में 'संशोधनवाद' के दोषी थे।
>
> "यदि, साम्राज्यवादी युद्ध के पहले के काल में लेनिन ने कहा कि राजकीय संरचना के लिए संघ उपयुक्त रूप नहीं है और 1917 में, सर्वहारा संघर्ष के नये अनुभव को ध्यान में रखते हुए उन्होंने इस सूत्र पर पुनर्विचार किया और बदल दिया और कहा कि समाजवाद में संक्रमण के काल में संघ राजकीय संरचना का उपयुक्त रूप है तो यह मतलब निकलता है कि लेनिन खुद अपने और लेनिनवाद के संबंध में 'संशोधनवाद' के दोषी थे।
> "इसी तरह और भी बहुत कुछ।
>
> "जिनोवियेव जो कुछ कहते हैं उससे यह मतलब निकलता है कि मार्क्सवाद को अपने को नये अनुभव से समृद्ध नहीं करना चाहिए और किसी भी

मार्क्सवादी क्लासिक की पृथक प्रस्थापनाओं और सूत्रों में कोई भी सुधार संशोधनवाद है।

"मार्क्सवाद क्या है? मार्क्सवाद एक विज्ञान है। क्या मार्क्सवाद एक विज्ञान के रूप में बना रहता और विकसित हो सकता है यदि इसे सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के नये अनुभव से समृद्ध नहीं किया जाता, यदि यह इस नये अनुभव को **मार्क्सवादी दृष्टिकोण से , मार्क्सवादी प्रणाली (method) के दृष्टिकोण से** ग्रहण नहीं करता? स्पष्टतः, नहीं।

"इस सबके बाद, क्या यह स्वतः स्पष्ट नहीं है कि मार्क्सवाद यह मांग करता है कि पुराने सूत्रों को मार्क्सवाद और इसकी प्रणाली के दृष्टिकोण को सुरक्षित रखते हुए नये अनुभव के अनुरूप परिवर्तित और समृद्ध किया जाना चाहिए? लेकिन जिनोवियेव इसका उलटा करते है तथा शब्दों को सुरक्षित रखते हैं और मार्क्सवादी दृष्टिकोण व प्रणाली को मार्क्सवाद के पृथक प्रस्थापनाओं से प्रतिस्थापित करते हैं। "वास्तविक मार्क्सवाद और मार्क्सवाद की बुनियादी लाइन को मार्क्सवाद के पृथक सूत्रों के शब्दों और पृथक प्रस्थापनाओं के उद्धरणों से प्रतिस्थापित करने की आदत में क्या संबंध हो सकता है।

"क्या इसमें कोई संदेह हो सकता है कि यह मार्क्सवाद नहीं, बल्कि मार्क्सवाद का उपहास है?

" मार्क्स और एंगेल्स ने जिनोवियेव जैसे 'मार्क्सवादियों को ध्यान में रखते हुए ही कहा था: 'हमारा सिद्धान्त कठमुल्ला मत नहीं है, बल्कि व्यवहार के लिए दिशा निर्देशक है।'

"जिनोवियेव की दिक्कत यह है कि वे मार्क्स और एंगेल्स के इन शब्दों के मतलब और महत्व को नहीं समझते।" (J.V. Stalin, 'The Seventh Enlarged Plenum of the ECCI, On the Opposition', वही, पृष्ठ 605-609)

अंत में, सारांश के तौर पर हम कहना चाहेंगे कि हमें मार्क्सवाद को धर्ममत के रूप में न लेकर, एक पथ प्रदर्शन विज्ञान के रूप में लेना चाहिए तथा इसके मूल विचारों और सर्वोपरि प्रणाली का इस्तेमाल करते हुए भारतीय क्रांति की ठोस समस्याओं को हल करने का प्रयास करना चाहिए। इन समस्याओं में कार्यक्रम, रणनीति व रणकौशल का सवाल आज सबसे महत्वपूर्ण है। इस सम्बंध में हमें अतीत के समस्त अनुभव को आत्मसात करना चाहिए तथा जड़सूत्रों से चिपकने के बदले जीवन की सच्चाइयों के अनुरूप नयी रणनीति व कार्यनीति तय करनी चाहिए। केवल यही हमें भारतीय क्रांति की सफलता की मंजिल तक पहुंचा सकता है।

❑ ❑ ❑